आप निर्मल गुणरूपी रत्नोंके समुद्र हैं। प्रभो, आपके समान इस लोकमें दूसरा कोई नहीं है, कारण आपके पुत्र भावी तीर्थंकर और तीन जगत्के महान् गुरु हैं। सब पर्वतोंमें सुमेरु पर्वत और समुद्रोंमें क्षीरसमुद्र जैसे महान् और प्रसिद्ध हैं उसी तरह हे समुद्रविजय महाराज, हे देव, आप सब क्षत्रियराजोंमें तिलक समान हैं। और हे मां शिवदेवि, संसारकी सच्ची माता आप ही हैं। कारण आप जिस पुत्रको पैदा करेंगीं वह जगत्का हितकर्त्ता और संसार-समुद्रका पार करनेवाला होगा। हे शुभानने, जैसे मोती सीपसे पैदा होता है उसी तरह आपसे तीर्थंकर जिन उत्पन्न होंगे। इस प्रकार उन देवतोंने उनकी स्तुति कर नृत्य किया, उन्हें प्रणाम किया। इस तरह वे जिन भगवानकी गर्भावतार क्रिया समाप्त करके पुण्य प्राप्तकर बड़े आनन्दके साथ अपने अपने लोकको चले गये। कुबेर इसके बाद भी नौ महीनेतक शिवदेवीके यहाँ रत्नवर्षा करता रहा। इसके सिवा इन्द्रकी आज्ञासे स्वर्गकी देवियाँ सोलहों सिंगार किये जगन्माता शिवदेवीकी सेवा करती रहीं। जिनका जो जो नियोग था—जिनके जिम्मे जो काम था उन्हें वे बड़े प्यारसे करती थीं। कितनी देवियाँ शिवदेवीको पवित्र जलसे स्नान कराती थीं; कितनी उसके पाँवोंको धोया करती थीं; कितनी उसे सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहराती थीं; कितनी सुगंधित केसर-चन्दनका उसके लेप करती थीं;कितनी उसे अच्छे अच्छे बहुमूल्य

आभूषण पहराकर सिंगारती थीं; कितनी उसे भोजन कराती थीं; कितनी उसे बड़े प्रेमसे पान वगैरह देती थीं; कितनी उसकी सेज-बिछा देती थी; कितनी उसके बैठनेको आसन वगैरह ला-दिया करती थीं—जैसी जैसी शिवदेवीकी इच्छा होती थी उसे जानकर वे उसी प्रकारकी वस्तु उनके लिए ले आती थीं। कोई उसे काच दिखाती थी, कोई उसपर छत्र किये खड़ी रहती थी, कोई आनन्दके साथ कथा-वार्ता कहकर उसके चित्तको खुश करती थी और कोई उसे हँसी-दिल्लगीमें उलझाये रहती थी। इस प्रकार सदा वे देवियाँ गुण-रत्नोंकी खान सुन्दरी शिवदेवीकी बड़े प्रेम और भक्तिसे आराधना करती थीं। निर्मल काचमें पड़े हुए प्रतिबिम्बकी तरह भगवानको गर्भमें रहनेसे माता शिवदेवीको कोई कष्ट न हुआ। स्फटिक—बिल्लौरके भवनमें रखी हुई कपूरकी राशिकी तरह भगवान् माताके गर्भमें मणिके समान बड़े सुखसे रहे। भगवान् तीर्थंकर नामके प्रभावसे गर्भमें ही तीन ज्ञानके धारक थे, बड़े महिमाशाली थे और पवित्रताकी एक मूर्ति थे। इस प्रकार पुण्यसे शिवदेवीके गर्भमें भगवान् नौ महीनेतक सुखपूर्वक रहे।

जिनके गर्भमें स्थित रहते इन्द्रोंने देवतोंके साथ आकर निरंतर सोने और रत्नोंकी वरसा की, जिनके माता-पिताको अमृतसे स्नान कराया और श्रेष्ठ वस्त्राभरण भेंटकर जिनका मान बढ़ाया वे नेमिजिन रक्षा करें।

इति षष्ठः सर्गः।

सातवाँ अध्याय।

देवों द्वारा नेमिजिनका जन्म-महोत्सव।

शुद्ध रत्न-भूमि जैसे सुन्दर रत्नको उत्पन्न करती है उसी तरह शिवदेवीने श्रावण सुदी छठको चित्रा नक्षत्रमें तीन ज्ञान विराजमान, परमानन्दमय-मोक्षके देने वाले और श्रेष्ठ गुणोंकी खान पवित्र नेमिनाथ जिनको उत्पन्न किया। कविकी बुद्धि जैसे सब लक्षणोंसे युक्त श्रेष्ठ काव्यको जन्म देती है उसी तरह शिवदेवीने इन श्रेष्ठ लक्षणोंके धारक नेमिजिनको जन्म दिया। भगवान्‌का दिव्य शरीर सब लक्षणों और व्यंजनों—प्रगट चिह्नोंसे युक्त था—जान पड़ता था जैसे देवतोंने भक्ति-वश हो उस सुन्दर शरीरकी फूलोंसे पूजा की है। भगवान्‌के जन्मसे त्रिभुवनमें एकाएक आनन्द छा-गया। लोगोंको वाणीसे न कहा जानेवाला सुख हुआ। सुखरूप 'तीर्थंकर' नाम पुण्य-वायुसे देवतोंके आसन हिल गये। मानों वे इस बातकी सूचना करने लगे कि त्रिलोकनाथ जिनको पृथ्वीपर रहते तुम्हें ऊपर बैठना योग्य नहीं है। उनके मुकुट अपने आप झुक गये—मानों वे यह कहते हैं कि तुम जिन भगवान्‌के महलपर जाओ। नेमिजिनके जन्मसे भव्यजनकी मद्वृत्तिकी तरह सब दिशायें निर्मल और सुखरूप होगईं। भगवान्‌के जन्मसे स्वर्गके कल्पवृक्षोंको भी बड़ी भारी खुशी हुई। सो वे

अपने आप फूलोंकी बरसा करने लगे। स्वर्गमें घण्टा बजने लगा—मानों वह त्रिलोकमें जिनजन्मकी सूचना दे रहा है। ज्योतिष्कदेवोंके विमानोंमें सिंहनाद होने लगा—जान पड़ा, वह जिनके आकस्मिक जन्मकी घोषणा कर रहा है। व्यन्तरदेवोंके यहाँ नगाड़े बजने लगे—मानों वे अपने इन्द्रोंको भगवानके श्रेष्ठ जन्मकी खबर दे रहे हैं। नागभवनोंमें शंख-ध्वनि होने लगी—मानों उसने नागकुमारोंको नेमिजिनके जन्मकी सूचना कर दी। इस प्रकार अपने अपने स्थानोंमें प्रगट हुए चिह्नों द्वारा जिनजन्म जानकर सब देवगणने परम आनन्दके साथ 'हे देव, आपकी जय हो, आप खूब फलें-फूलें' इत्यादि कहकर भगवान्को परोक्षमें नमस्कार किया। और इसके बाद वे जिनके यहाँ आनेको तैयार हुए। उस समय इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने ऐरावत हाथीको सजाया। उस हाथीका मुनिजनोंने जैसा वर्णन किया है वैसा थोड़ेमें यहाँ भी लिखा जाता है।

वह हाथी बहुत ऊँचा और बड़े जोरकी गर्जना करनेवाला था। बड़ी शीघ्रतासे चलनेवाला और बहुत मोटी सूँड़वाला था। चलते समय वह कैलास पर्वतके समान जान पड़ता था। गलेमें जिसके दो बड़े बड़े घंटे लटक रहे हैं और लाख योजन लम्बा-चौड़ा वह ऐरावत जब जोरसे चिंघाड़ता था तब जान पड़ता था मेघोंको नीचा दिखानेकी कोशिश कर रहा है। उसके बत्तीस मुँह थे। एक एक मुँहमें आठ आठ दाँत थे। एक एक दाँतपर निर्मल पानीका भरा

सुन्दर तालाब था । जैनतत्वके जाननेवाले मुनिजनोंने उस एक एक तालाबमें एक एक कमलिनी बतलाई है । उस एक एक कमलिनीपर बत्तीस बत्तीस कमल थे । एक एक कमल तीस तीस पत्तोंसे युक्त था । पत्ते-पत्तेपर एक एक जिनभक्ति तत्पर देवाङ्गना बड़े हाव-भाव-विलास-विभ्रमके साथ नृत्य कर रही थी । उनका नृत्य देखकर देवोंका मन भी मोहित हो जाता था । इस प्रकार सुन्दर उस हाथीपर रत्नमयी अम्बाड़ी शोभा दे रही थी । उससे वह ऐसा जान पड़ता था—मानों बिजली जिसमें चमक रही है ऐसा शरद-ऋतुका मेघ है । सोनेका सिंहासन उसपर सजाया गया था। चँवर, झूल, आदिसे वह अलंकृत था । छोटी छोटी घंटियोंके सुन्दर आवाजसे वह लोगोंके मनको मोहित कर रहा था। सौधर्मेन्द्र, इन्द्रानी और अपने अनुचर देवोंके साथ उस हाथीपर सवार हुआ । उसपर चँवर दुर रहे थे । चँदोवा तन रहा था । देवगण छत्र लिये खड़े थे । इसी समय इन्द्रके साथ चलनेको नागेन्द्र, चन्द्र और सूर्य-विमानके इन्द्र, व्यंतरोंके इन्द्र आदि भी अपने अपने हाथी, घोड़े, मोर, तोते वगैरह आकारके बने हुए विमानोंमें बैठ-बैठकर इन्द्रसे आकर मिल गये । सबके आगे इन्द्रको करके देवगण नगाड़े आदि बाजोंको बजाते हुए, फूलोंकी बरसा करते हुए, गाते हुए, नृत्य करते हुए, जयजयकार बोलते हुए, और सुन्दर स्तुतियोंसे जगत्को शब्दमय बनाते हुए,

सब देव-देवाङ्गनाओंके साथ द्वारिका पहुँचे। वहाँ वे इन्द्र-गण और सारी देवसेना ध्वजाओंसे शोभित द्वारिकाकी प्रदक्षिणा देकर उसे घेरकर ठहर गई। इसके बाद सौधर्मेन्द्र अन्य इन्द्रोंके साथ तोरणोंसे सजे हुए राजमहलमें प्रवेश कर जयजयकार करता हुआ शिवदेवीके आँगनमें पहुँचा। वहाँसे फिर उसने अपनी इन्द्रानीको शिवदेवीके महलमें भेजा। इन्द्रानी बड़े आनन्दसे प्रसूति-घरमें चली गई। वहाँ उसने कल्पवेलकी समान उज्ज्वल शिवदेवीको जिनसहित सोती हुई देखकर उसकी स्तुति की। माता, तुम तीन जगत्के स्वामी जिनकी माता हो, त्रिलोक पूज्य हो, और सारे स्त्री-संसारका एक सुन्दर अलंकार हो। जैसे खान रत्नोंको उत्पन्न करती हैं उसी तरह तुमने जिनरूप रत्न उत्पन्न किया है। अत एव तुम सारे संसारकी हितकर्त्ता हो। माता, पवित्रता और सौभाग्यमें तुम सबसे बढ़कर हो। क्योंकि त्रिलोकप्रभु जिन तुम्हारी ही कूँखमें जन्मे हैं। इस प्रकार स्तुति कर इन्द्रानीने शिवदेवीको बड़ी भक्तिसे मस्तक नवाया। इसके बाद उसने जिनमाताको सुख-नीदमें सुलाकर और मायामयी बालक उसके पास रखकर हँसते हुए त्रिलोकनाथ जिन-बालकको हाथोंमें उठा लिया। उन बालक जिनका स्पर्शकर इन्द्रानीको जो प्रेम, जो आनन्द हुआ वह वाणी द्वारा नहीं कहा जा सकता। इन्द्रानीने उन दिव्य शरीरके धारक बालक जिनको प्रसूति-घरसे लाकर अपने स्वामीको अर्पण कर दिया। इन्द्रने उन

त्रिलोक-श्रेष्ठ जिनको देखकर प्रणाम किया और भक्ति वश हो बड़े जोरसे उनका जयजयकार किया। इसके बाद उसने उन कमल-समान कोमल जिनको निर्मल निधिकी तरह हाथोंमें लेकर कोमल गोदमें बैठा लिया। ईशानेन्द्रने उस समय जिननाथके सिरपर भक्तिसे चन्द्रमाके समान निर्मल छत्र किया। सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गके इन्द्रोंने आनन्दित होकर भगवान्‌के ऊपर चँवर ढोरना शुरू किया। इनके सिवा और सब देव-देवाङ्गनायें भी अपने अपने नियोगके अनुसार जिनकी सेवा करनेको तत्पर हुईं।

इसके बाद सौधर्मेन्द्रने जयजयकारके साथ मेरुकी ओर चलनेके लिए हाथका इशारा कर उस पर्वत समान हाथीके अपने पाँवका अँगूठा लगाया। सौधर्मेन्द्रका इशारा पाकर हाथी चला। खूब बाजे बजने लगे। देवगण 'जय' 'नन्द' आदि कहकर भगवान्‌का जयघोष करने लगे। देवाङ्गनायें आनन्दित होकर गाने और नृत्य करने लगीं। कितनी देवाङ्गनायें आकाशमें गा रही थीं, नाच रही थीं। कितने देवगण प्रसन्नताके मारे आकाशमें उछल रहे थे। कितने भगवान्‌का चन्द्र-समान निर्मल यश गा रहे थे। कितने भगवानकी स्तुति-प्रार्थना ही करते जाते थे कि हे देव, हे जिनराज, आज सचमुच हमारा देव-जन्म सार्थक हुआ जो हमने आँखोंसे आपको देखा। इस प्रकार परम आनन्दसे वे भगवान्‌के सामने कह रहे थे—मानों जैसे उनके हाथमें निधि ही

आगई हो। कितने देवगण ताल ठोकते हुए कूद रहे थे। कितने भगवान्‌के ऊपर फूलोंकी वरसा करते जाते थे। इस प्रकार सौधर्मेन्द्र अन्य सब देवगणके साथ जिनभगवान्‌को कुवेरके बनाये मणिमय रास्तेसे ज्योतिषचक्रको लाँघता हुआ मेरुपर लेगया। मेरुकी उसने प्रदक्षिणा दी। इसके बाद उसने मेरु-सम्बन्धि नाना प्रकारके फले-फूले वृक्षोंसे युक्त और चारों दिशाओंमे बने हुए सुन्दर जिनमन्दिरोंसे शोभित, पाण्डुक नाम वनमें जो पाण्डुकशिला है, उस पर जिनभगवान्‌को विराजमान किया। पाण्डुक वनके ईशानकोणमें रखी हुई वह पवित्र पाण्डुकशिला अर्ध चन्द्रके समान आकारवाली और बड़ी ही सुन्दर है। वह पूरवसे पश्चिमकी ओर सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊँची है। शिलाका मुँह दक्षिणकी ओर है। उसे देवगण पूजते है। जिनको धारण करनेसे वह भी जिनमाताके समान पवित्र गिनी जाती है। उसके चारों ओर वन है। वह वेदी, रत्नोंके बने तोरण आदि मंगल द्रव्योंसे शोभित है। उसपर जिनभगवानके बैठनेका पाँचसौ धनुष ऊँचा गोलाकर एक उत्तम सिंहासन है। उसकी चौड़ाई भी पाँचसौ ही धनुषकी है; और उसका मुखभाग अढ़ाईसौ योजनका है।

इसी सिंहासनपर दुःखरूप अग्निके बुझानेको मेघ समान जिन विराजमान किये गये। इन्द्र द्वारा सिंहासनपर विराजमान किये हुए जिन ऐसे शोभने लगे—मानों उदयाचलपर बाल

सूरज उगा है । भगवान्‌के सिंहासनके पास ही दक्षिण और उत्तरकी बाजूमें सौधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्रके दो सुन्दर सिंहासन थे । इसके बाद इन्द्रने परम प्रसन्न होकर जिनकी भक्तिसे अपने हजार हाथ किये और इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत्य वरुण आदि दिग्देवतोंको यज्ञभागके अनुसार यथास्थान स्थापित किया ।

इतना करके इन्द्र जिनका अभिषेक करनेको तैयार हुआ। उसने, नाना रत्नोंसे जड़े हुए, क्षीरसमुद्रके पवित्र जलके भरे हुए, चन्दन आदि सुगंधित वस्तुओंके रससे छींटे गये, मोतियोंकी मालाओंसे शोभायमान, आकाश-लक्ष्मीके स्तनसे जान पड़नेवाले, श्रेणी बाँधकर खड़े हुए देवतों द्वारा एक हाथसे दूसरे हाथमें दिये गये अतएव हाथरूपी डालियोंसे उठाये हुए सुन्दर कल्पवृक्षके फलोंके समान जान पड़नेवाले, नाना प्रकारकी शोभाओंसे शोभित, सत्पुरुषोंके मनके समान निर्मल, भव्यजनोंको मनचाहे सुखके देनेवाले, सम्यग्दर्शनके समान निर्मल, आठ योजन ऊँचे और एक योजन चौड़े मुँहवाले सोनेके कलशोंसे गीत, संगीत, वादित्र, जय-जयकार आदि पूर्वक शास्त्रोक्त महामंत्रका उच्चारण कर जिनभगवान्‌का अभिषेक किया । उस समय वह जलपूर भगवान्‌के नीले शरीरपर ऐसा जान पड़ा—मानों इन्द्रनील-गिरिपर मेघ बरस रहा है । इसके बाद वह सफेद जलपूर सुमेरुपर गिरा—जान पड़ा नेमिजिनके उज्ज्वल यशने सुमेरुको ढक दिया। उस जलपूरसे परस्परको छींटते हुए देवगण ऐसे देख पड़ने लगे—

मानों वे समुद्रमें क्रीड़ा कर रहे हैं। देवोंको क्रीड़ा करते देखकर देवाङ्गनायें भी अपने मनको न रोक सकीं, सो वे भी उस जिनशरीरके स्पर्शसे पवित्र जलपूरमें क्रीड़ा करने लगीं। वह जलपूर उन असंख्य देवतोंसे रोका जानेपर भी अक्षीण-ऋद्धिके प्रभावसे बहुत होगया। वह सारे पर्वतके चारों ओर फैल गया—जान पड़ा कि जिनकी संगति पाकर उसे इतना आनन्द हुआ कि वह लोट-पोट हो रहा है। वह जलपूर जिनके शरीरसे नीचे गिरता हुआ भी ऐसी शोभाको प्राप्त हुआ—मानों पृथ्वीको पवित्र बना रहा है। जो पूर जिनके शरीरका संग पाकर खूब पवित्र हो गया, भला, फिर वह किसे पवित्र न बना देगा। इन्द्रने जो अभिषेकोत्सव मेरुपर किया उस महान् उत्सवका मुझ सदृश बुद्धिहीन कैसे वर्णन कर सकते हैं। इस अभिषेकोत्सवको देखकर कई मिथ्यात्वी देवोंने मिथ्यात्व छोड़कर सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लिया। इस प्रकार आनन्द और उत्सवके साथ जिनाभिषेकोत्सव समाप्तकर इन्द्र और इन्द्रानीने स्वभाव-सुगन्धित जिनदेहमें केसर, कपूर, चन्दन, अगुरु आदि सुगन्धित वस्तुओंका लेप किया। इन्द्रनीलमणि-समान कान्तिके धारक नेमिजिनके शरीर-पर वह लेप ऐसा जान पड़ा—मानों नीलगिरिपर सन्ध्याकालकी ललाईकी झाँई पड़ रही है। इसके बाद इन्द्रने उन्हें सुन्दर वस्त्र पहराये—उनसे भगवान् ऐसे जान पड़े मानों शुभलेश्या-ओंने, अधिकताके कारण भीतर न समा सकनेसे बाहर आकर

भगवान्‌का आश्रय लिया है। भगवान्‌के कानोंमें पहराये हुए सुवर्ण-रत्नमयी कुण्डल सेवामें आये हुए सूरजके समान जान पड़े। छातीपर पड़े हुए सुन्दर हारने भावी केवलज्ञान-रूपी लक्ष्मीके झूलनेके लिए झूलेकीसी शोभा धारण की। हाथोंमें पहराये हुए पँचरंगी रत्नजड़े सोनेके कड़े जीवके उप-योग ज्ञान-दर्शनसे जान पड़े। जिसमें मणि चमक रही है ऐसी जिनकी कमरमें पहराई हुई करधनी उनके वहुत अर्थवाले सूत्रके समान शोभाको प्राप्त हुई। छम छम शब्द करते हुए पाँवोंके झाँझर ऐसे जान पड़े—मानों भगवान्‌के पूज्य चरणोंका आश्रय पाकर वे वड़े सन्तुष्ट हुए। जिनके गलेमें सुगन्धित फूलों-की मालाने शरीर धारण किये हुए निर्मल कीर्तिकी शोभाको धारण किया। इसके वाद इन्द्रानीने भी त्रिलोक-भूषण जिनको भक्तिके वश हो खूब सिंगारा। इस प्रकार इन्द्र और इन्द्रानीने श्रेष्ठसे श्रेष्ठ वस्त्राभरणसे भगवान्‌को अलंकृत कर वारम्वार नमस्कार किया। "ये भगवान् दसलक्षणरूप धर्मरथके चक्रको चलानेमें नेमि—धारके समान हैं," यह कहकर इन्द्रने उनका नाम 'नेमिनाथ' रख दिया। उस समय सव देव-देवाङ्गनाओंने "हे नेमिनाथ जिन, आपकी जय हो," कहकर भगवान्‌का जयजयकार किया। देवोंके इस जयजय-कारसे सारा मेरु पर्वत गूँज उठा—जान पड़ा वह भी नेमि-जिनका जयजयकार कर रहा है। इतना उत्सव करके इन्द्र पहलेकी तरह गाजे-वाजेके साथ भगवान्‌को द्वारिका लाया।

वहाँ उसने समुद्रविजय महाराज और शिवदेवीको मन-वाणी-कायसे नमस्कार कर भगवान्को उनके हाथोंमें रख दिया। इसके बाद उस नट-शिरोमणि इन्द्रने परम आनन्दित होकर उनके सामने हजार भुजायें, हजार आँखे और एकसौ पाँच मुँह करके सुन्दर अभिनय किया। सुन्दरताकी अवतार देवाङ्गनाओंने भी बड़े सुन्दर गान-रस-भाव-लय आदिके साथ नृत्य किया। इन्द्रने जब लोगोंके मनको मोहित करनेवाला नृत्य शुरू किया तब बाजोंके शब्दसे दसों दिशायें भर गईं। नृत्य करता हुआ इन्द्र क्षणभरमें आकाशमें इतना उछलता था—मानों चाँद-सूरजको तोड़ लेना चाहता है और उसीके दूसरे क्षणमें जमीनपर आकर लोगोंको रंजायमान करने लगता था। नृत्य करते समय उसके पाँवोंके आघातसे पृथ्वी काँप उठती थी। पर्वत हिल जाते थे। समुद्र खोलने लगता था। वह अपने हाथकी उँगलीके इशारेसे जब स्वर्गकी उन सुन्दर अप्सराओंको नचाता और वे भी हाव-भाव-विलास-विभ्रमके साथ नाचतीं तब ऐसा जान पड़ता था—मानों सोनेकी पुतलियोंको वह नचा रहा है। उन अप्सराओंके त्रिलोक-सुन्दर गानेको सुनकर लोगोंका मन बड़ा ही मोहित हो जाता था। जिस अभिनयके प्रधान दर्शक समुद्रविजय महाराज, त्रिजगत्स्वामी नेमिनाथ जिन, और महासती शिवदेवी तथा अन्य बड़े बड़े यादव जन थे और अभिनय करनेवालोंमें इन्द्र तो नटाचार्य, नाचनेवाली देवाङ्गना,

गानेवाले स्वर्गीय गन्धर्व और जयजयकार करनेवाले देव-गण थे उस जगत्को आनन्दित करनेवाले अभिनयका कौन वर्णन कर सकता है? इस प्रकार महान अभिनय कर और बड़ी भक्तिसे भगवान्के गुणोंको लोकमें प्रगट कर, इन्द्र उन त्रिजगके हितकर्त्ता नेमिजिनको नमस्कार कर अपने देवगणके साथ स्वर्गलोक चला गया।

जगच्चूड़ामणि श्रीनेमिनाथ जिन नमिनाथ तीर्थंकरके पाँच लाख वर्ष बाद हुए। इनकी आयु एक हजार वर्षकी थी। इनका रंग श्याम था—पर बड़ा सुन्दर था। भगवान्का जन्मकल्याण कर इन्द्रको चले जानेपर समुद्रविजय महाराजने फिर और वड़े ठाट-बाटसे नेमिजिनका जन्मोत्सव मनाया। लोगोंको उन्होंने कल्पवृक्षके समान मनचाही धन-दौलत, वस्त्राभरण आदि दानकर सन्तुष्ट किया। उस समय सुखदेनेवाले निधिकी तरह उनके महादानसे दुःख, दारिद्र्य आदिका नाम भी न रहा। द्वारिकाकी धनी प्रजाने भी आनन्दसे फूलकर घर-घरमें खूब उत्सव किया। स्त्रियोंने आनन्दसे विह्वल होकर इस उत्सवमें खूब गाया, बजाया और नृत्य किया। इस प्रकार जिनजन्मसे त्रिलोकके सब जीवोंको चिन्तामणिके लाभ समान बहुत ही सुख हुआ।

नेमिजिन अब दिनोंदिन उत्सव-आनन्दके साथ बढ़ने लगे। दान-मानादिसे जगत्को खुश करने लगे। स्वर्गके देव देवाङ्गना-गण त्रिलोक-पूज्य नेमिजिनके लिए स्वर्गीय,

दिव्य वस्त्राभरण भेंट लाकर उनकी सेवा करने लगे, और हर समय नौकरकी तरह बड़े प्रेमसे उनके लिए छहों ऋतुके नये नये फल-फूल लाकर उन्हें सन्तुष्ट करने लगे। नेमिजिन रत्नमयी आँगनमें देवकुमारोंके साथ नाना तरहके खेल खेलकर लोगोंके मन खुश किया करते थे। उनकी इस बाल-लीलासे उनके माता-पिताको जो आनन्द होता था, वह अपूर्व था। खेलते खेलते कभी नेमिजिन रत्न-धूलकी मुट्ठी भरकर देवकुमारोंके सिरपर डाल देते थे। उससे वे प्रसन्न होकर अपने जन्मको सफल मानते थे। कभी देवकुमार-गण मोर, तोते आदिका रूप लेकर भगवान्‌को खिलाया करते थे। इस प्रकार आनन्द-उत्सवके साथ नेमिजिनने कुमार-काल पूराकर जवानीमें पैर रक्खा। कोई पैंतीस हाथ ऊँचा नेमिजिनका वस्त्राभूषणसे अलंकृत शरीर ऐसा जान पड़ता था—मानों महादानी चलने-फिरनेवाला कल्पवृक्ष है। भगवान्‌के पवित्र शरीरमें तीर्थंकर नाम पुण्य-प्रकृतिके उदयसे कभी पसीना नहीं आता था। तपे हुए लोहेके गोलेपर जैसे पानीकी बूँद उसी समय जल जाती है उसी तरह भगवान्‌के शरीरमें कोई प्रकारका मल नहीं होता था। उनके शरीरमें खून दूधके जैसा सफेद था। उनके शरीरका संस्थान—आकार समचतुरस्र था। वे सुदृढ़ वज्रवृषभनाराचसंहननके धारक थे और इसी कारण उनका शरीर शस्त्रवगैरहसे कभी नहीं छेदा जा सकता था। उनकी रूप-सुन्दरता सर्वश्रेष्ठ और इन्द्र

धरणेन्द्र आदि सभीका मन मोहित करनेवाली थी। भगवान्का शरीर स्वभावसे ही इतना सुगन्धित था कि केसर, कपूर, अगुरु, चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुयें उसमें कुछ भी विशेषता न कर सकीं। भगवान्का शरीर छत्र, चँवर, कमल आदि एक सौ आठ लक्षण[1] और कोई नौ-सौ तिल आदि व्यंजन[2]—प्रगट चिह्नोंसे बड़ा ही शोभित हुआ। भगवान्के जो तीर्थंकर नाम पुण्य-प्रकृतिका उदय था उससे ये लक्षण और व्यंजन उनके शरीरमें हुए थे। उन एक-सौ आठ लक्षणोंके नाम ये हैं—श्रीवृक्ष, शंख, कमल, सातिया, कुश, तोरण, चँवर, छत्र, सिंहासन, धुजा, दो मछलियाँ, दो कलश, कछुआ, चक्र, समुद्र, तालाव, विमान, गृह, धरणेन्द्र, स्त्री, पुरुष, सिंह, बाण, धनुष, मेरु, इन्द्र, सुरगंगा, चाँद, सूरज, पुर, दरवाजा, वीणा, पंखा, वेणु, तपला, दो फूलमाला, हार, रेशमी वस्त्र, कुण्डल वगैरह आभूषण, पका हुआ शालका खेत, फलयुक्त वन, रत्नद्वीप, वज्र, पृथ्वी, लक्ष्मी, सरस्वती, कामधेनु, बैल, मुकुट, कल्पबेल, निधि, धन, जामनका झाड़, अशोकवृक्ष, नक्षत्र, गरुड़, राजमहल, तारा, ग्रह, आठ प्रातिहार्य, आठ मंगलद्रव्य, और ऊर्द्ध रेखा—आदि। जिनके इन लक्षणोंकी भावना भव्यजनोंको सम्पदा, सौभाग्य, सुख और यशकी

---

[1] जन्मसे मृत्युपर्यन्त शरीरमें रहनेवाले चिह्न लक्षण कहे जाते हैं। जैसे छत्र, चँवर आदि। [2] और जो शरीरमें पीछेसे प्रगट होते हैं उन्हें व्यंजन कहते हैं। जैसे तिल आदि।

करती है। ब्रह्मचर्यव्रतके प्रभावसे होनेवाली भगवान्‌की शक्ति, त्रिकालमें उत्पन्न देवोंकी शक्तिसे अनन्तानन्त गुणी थी। भगवान्‌के मुख-कमलमें विराजी हुई सरस्वती जीवोंके लिए प्रिय, हितकारी और बहुत थोड़ेमें समझानेवाली, थी। इत्यादि गुणरूप रत्नोंके भगवान् जन्महीसे खान थे। उन इन्द्रादि-पूज्य नेमिजिनके सौभाग्य-सम्पदाका वर्णन गणधर देव भी नहीं कर सकते तब और कौन उसका वर्णन कर सकता है। आकाश जैसे बिलस्त द्वारा और समुद्र जैसे चुल्लु द्वारा नहीं मापा जा सकता उसी तरह परमानन्द देनेवाले और चन्द्र-माकी कान्तिसे भी कहीं अधिक निर्मल नेमिजिनके श्रेष्ठ गुणोंकी किसी तरह गणना नहीं की जा सकती। इस प्रकार दाता, दयानिधि, अत्यन्त निस्पृह, ज्ञानी, सबको प्यारे, धीर, मोक्ष जिनसे बहुत ही निकट है और इन्द्रादि देवता-गण बड़े प्रसन्न हो-होकर जिनकी सेवा करते हैं ऐसे नेमिजिन-कुमार लोगोंके मनको खुश करते हुए अपने सम्पदासे भरे-पुर राजमहलमें सुखके साथ समय विताने लगे।

जन्ममहोत्सवके समय इन्द्रने जिन्हें स्नान कराया, सुमेरु-पर जिनका स्नान हुआ, जिनके स्नानके लिए समुद्रका जल लाया गया, देवता-गणने जिनकी बड़े आदरके साथ सेवा की, जिनके उत्सवमें अप्सरायें नाचीं, और गन्धर्व देवोंने जिनकी कीर्ति गाई वे नेमिजिन सबको सुख दें।

इति सप्तमः सर्गः।

आठवाँ अध्याय।

कृष्ण-बलदेवकी दिग्विजय-यात्रा।

एक बार मगधदेशके रहनेवाले कुछ महाजनोंके लड़कोंने व्यापारकी इच्छासे समुद्रयात्रा की। कर्मयोगसे वे रास्ता भूलकर, पँचरंगी धुजाओंसे स्वर्गकी शोभाको नीची दिखानेवाली द्वारिकामें आगये। द्वारिकाको सब श्रेष्ठ सम्पदासे भरी-पुरी देखकर वे बड़े खुश हुए। यहाँसे उन्होंने कुछ बहुमूल्य रत्न खरीद किये। उन रत्नोंको राजगृह जाकर उन्होंने चक्रवर्त्ती जरासंधकी भेंट किये। अपनी कान्तिसे चारों ओर प्रकाश करदेनेवाले उन रत्नोंको देखकर जरासंध बड़ा खुश हुआ। उसने उन महाजन पुत्रोंको पान-सुपारी देकर पूछा—आप इन रत्नोंको कहाँसे लाये हैं? सुनकर वे महाजन-पुत्र बोले—महाराज, सुनिए।

हम लोग समुद्र-मार्गसे किसी दूसरे देशको जा रहे थे। रास्तेमें दिग्भ्रम हो जानेसे हम द्वारिकामें पहुँच गये। महाराज, द्वारिका बड़ी सुन्दर नगरी है। सब श्रेष्ठ सम्पदासे वह परिपूर्ण है। घर-घरपर फहराती हुई धुजाओंसे वह बड़ी शोभा देती है। उसमें बड़ा सुन्दर जिनमन्दिर है। दरवाजे दरवाजेपर टँगे हुए तोरणों और सब प्रकारकी उत्तमसे उत्तम वस्तुओंसे वह लोगोंके मनको बड़ा आकर्षित

करती है। यादव-वंश-शिरोमणि श्रीसमुद्रविजय महाराज, उनकी रानी शिवदेवी और उनके सुरासुर-पूज्य, जगच्चूडा_ मणि पुत्र श्रीनेमिनाथ जिनके सम्बन्धसे वह रत्न-खानके समान जान पड़ती है। जिसने अपनी सुन्दरतासे देव-देवाङ्गना आदि सभीको जीत लिया है और जो बड़ी मनोहर है। और महाराज, शूरवीर-शिरोमणि कृष्ण अपने भाई बलभद्रके साथ वहीं रहता है। वे दोनों भाई ऐसे तेजस्वी वीर हैं कि शत्रु तो उनके सामने सिरतक नहीं उठा पाते—शत्रुकी बढ़वारीको उन्होंने दबा दिया है। महाराज, द्वारिका नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी है। धन-धान, सुख-सम्पदा आदिसे वह भरी-पुरी और सब जनकी इच्छाओंको पूरी करनेवाली है। इस प्रकार द्वारिकाकी बड़ी ही सुन्दर शोभा है महाराज,। देव, हम लोग इन मनोहर और पुण्य-समूहके समान उज्ज्वल रत्नोंको उसी द्वारिकासे लाये हैं। यह सब हाल सुनकर क्रोधके मारे जरासंधकी आँखें लाल होगईं। वह क्रोधभरी आँखोंसे अपने बड़े पुत्र कालयवनके मुँहकी ओर देखकर बोला—क्या मेरे शत्रु यादव-गण अबतक पृथ्वीपर जीते हैं? यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है। तुमसे तो मैंने सुन पाया था कि वे मेरे डरसे आगमें जलकर मर गये। अस्तु, जो हो, उन उद्धत लोगोंको मैं अभी ही जाकर मारूँगा। इस प्रकार क्रोधमें आकर जरासंधने उसी समय युद्ध-घोषणा दिलवा दी। उसे सुनकर वीरगणमें

बड़ी हलचल मच गई । इसके बाद उसने हाथी, घोड़े, रथ, पैदल-सेना तथा विद्याधर, देवतागण आदिके साथ युद्धके लिए कूच किया । उसके साथ भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्व-त्थामा, रुक्मी, शल्यराज, वृषसेन, कृप, भूमिनाथ, कृपवर्मा, रुधिर, सेन्द्रसेन, जयद्रथ, हेमप्रभ, दुर्योधन, दुश्शासन, दुर्मर्ष, दुर्धर्ष, भगदत्त—आदि बड़े बड़े राजे-महाराजे, तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रसे सजे हुए वीरगण थे । इस प्रकार षड़ङ्ग-सेनासे युक्त जरासंध बड़ी तैयारीके साथ याद-वोंके ऊपर चढ़ाई कर कुरुक्षेत्रमें आया । उसकी विशाल सेनाको देखकर यह जान पड़ता था कि कहीं प्रलय कालके कुपित वायुसे समुद्र तो नहीं चल गया है ।

इसी समय कलह-प्रिय नारदने युद्धका सब कारण जान-कर कृष्णसे आकर कहा—आप ऐसे निर्भय होकर क्यों बैठे हुए हैं ? जान पड़ता है आपको कुछ मालूम नहीं है । अच्छा तो सुनिए—मदान्ध जरासंध शत्रु बड़ी भारी सेनाको साथ लेकर आपसे युद्ध करनेको कुरुक्षेत्रमें आ रहा है । और वह कहता है कि मेरे चाणूर पहलवानको मार डालनेवाले कृष्णको मैं भी अब किसी तरह जीता न छोड़ूँगा । उसे सारे कुटुम्बसहित जमीनमें मिला दूँगा । नारद द्वारा यह हाल सुनकर कृष्ण श्रीनेमिनाथके पास गये और उन्हें नमस्कार कर बोले—प्रभो, मगधका राजा जरासंध अपने विरुद्ध चढ़ाई कर युद्ध करनेके लिए आगया है । इस कारण द्वारिकाकी रक्षा तो

आप कीजिए और मैं आपकी कृपासे उसे जीतकर बहुत शीघ्र पीछा लौट आता हूँ। यह सुनकर नेमिनाथने अपना प्रफुल्ल मुख-कमल उठाकर प्रेमभरी आँखोंसे, हँसते हुए कृष्णकी ओर देखकर कुछ मुसकाया और अवधिज्ञानसे कृष्णकी विजय तथा उस योग्य उसका पुण्य जानकर 'ॐ' कहा। अर्थात् देवता-पूज्य नेमिजिनने 'ॐ' कहकर कृष्णकी वातको मान लिया। भगवान्‌की आज्ञा पाकर कृष्ण मनमें बहुत खुश हुए। भगवान्‌को हँसते हुए देखकर उन्हें निश्चय हो गया कि इस युद्धमें मैं अवश्य जयलाभ करूँगा। इसके वाद कृष्ण, भगवान्‌को प्रणाम कर बलभद्र, जय, विजय, सारण, अंगद, धव, उद्धव, सुमुख, अक्षर, जरराज, पाँच-पांडव, सत्यक, द्रुपद, विराट, धृष्ट, अर्जुन, उग्रसेन–आदि यादव-गण, शत्रुका नाश करनेवाले अन्य बड़े बड़े राजे-महाराजे तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे सजी हुई हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि सेना-से सजकर बड़ी तैयारीके साथ जरासंधपर विजय-लाभ करनेको कुरुक्षेत्रमें आ उपस्थित हुए। उनकी सेनामें बजते हुए बाजोंसे सब दिशायें शब्दमय होगईं। वीर योद्धाओंका उत्साह खूब बढ़ गया। डरपोक लोग भागने लगे। उस समय शत्रु-नाशकी इच्छा करनेवाले; कमर कसे हुए, महा बलवान् और संग्राम-शूर कृष्णवर्ण-धारी श्रीकृष्ण यमके समान देख पड़ते थे।

इसके वाद यमसेना-समान देख पड़नेवाली दोनों ओरकी सेना

खूनके प्यासे कुरुक्षेत्रमें आ-डटी । पहले कृष्णकी सेनामें युद्धके नगाड़ोंकी महान् ध्वनि उठी । उसे सुनकर कितनेही धर्मात्मा वीरगणने बड़ी भक्तिसे सुखकर्त्ता जिनभगवान्‌की पूजा की । कितनोंने दान दिया । कितनोंने अपने योग्य व्रतोंको धारण किया । इसके वाद दोनों ओरकी सेनाओंके राजोंने अपने सेवक-वर्गको आज्ञा दी कि घोड़े तैयार किये जायँ; मद-मस्त और चलने फिरनेवाले पर्वत समान बड़े बड़े हाथी ध्वजा, अम्वाड़ी आदिसे सजाये जायँ; युद्धोपयोगी सब वस्तुओंसे परिपूर्ण अत एव पूर्णताको प्राप्त मनोरथके समान जान पड़ने-वाले रथोंके घोड़े जोते जायँ; वीरगग जयश्रीके कुण्डल-सदृश और शत्रुओंके खूनके प्यासे धनुष चढ़ावें; योद्धागण हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र धारणकर सावधान होवें और सुभट लोग मिलकर रणमें भूखे कालको तृप्त करें । अपने अपने प्रभुकी आज्ञा पाकर रण-प्रिय वीरगण अपने अपने काममें लग गये । कृष्णने अपने सेनापतियोंको व्यूह-रचनाके लिए आज्ञा दी । उनकी आज्ञानुसार उसी समय व्यूहरचना होगई । उधर जरासंधने भी युद्ध-भूमिमें आकर बड़े गर्वके साथ अपनी सेनाको सजाया । इस प्रकार परस्प-रके खूनकी प्यासी दोनों ओरकी सेना अच्छी तरह सजकर तैयार हुई । रणके जुझाऊ वाजे वजने लगे । आकाश और पृथ्वी शब्दमय होगई । दोनों सेनाकी मुठभेड़ होते ही वीर-गण परस्परमें तीखे, प्राणोंके प्यासे, निर्दय, और दुर्जनके

सदृश बाणोंको छोड़ने लगे। उन धनुर्धारियोंके हाथोंसे छूटे हुए असंख्य बाणों द्वारा मिथ्यान्धकारसे ढक गये जगत्‌की तरह आकाश छा-गया। और कितने, बाणोंसे बींधे गये वीरगणके शरीरसे जो रक्त बहा उससे वे ऐसे जान पड़े मानों ढाक—पलाश फूला है। बड़े वेगसे एकके बाद एक बाण जो छोड़ा गया उससे गाढ़ अँधेरा हो गया। उसमें खड़े हुए वीरगणकी दृष्टिका कहीं संचार न होनेसे—एक ही जगह रुक जानेसे वे मिथ्यादृष्टिके समान देख पड़ने लगे। इस लिए स्वामीके सत्कारकी ओर चित्त देनेवाले वे महापराक्रमी धनुर्धारी-गण क्षणभर ठहरकर युद्ध करते थे। कितने शत्रुओंके खूनके प्यासे यम-समान वीर योद्धाओंने हाथमें धारण किये शस्त्रोंसे शत्रुओंको खूब ही काटा। कितने कटे हाथवाले योद्धाओंके हाथ फैलते न थे—जान पड़ता था पापके उदयसे वे दरिद्र होगये। कितने पाँव कट जानेसे रास्तेमें पड़ गये थे—अपने स्थानपर नहीं जा सकते थे। वे ऐसे जान पड़ते थे—मानों बिना पाँवके मनुष्य हैं। प्राण निकलनेसे इधर उधर पड़ते हुए हाथी पर्वतसे देख पड़ते थे। उस युद्धका क्या वर्णन किया जाय। वहाँ जो खूनकी नदी वही वह जीवोंकी प्राण-हारिणी बैतरणीके समान देख पड़ती थी। गहरी चोट लगनेसे मूर्छित हुए कितने वीरगणोंकी आँखें मिच गईं। वे न बोल सकते थे और न जा सकते थे अतएव वे योगियोंसे जान पड़ते थे। कितने योद्धाओंने अपने शस्त्रोंसे शत्रु-

ओंके शस्त्रोंके काटनेमें बड़ी ही कुशलता दिखलाई। कितने वीरोंके गहरा घाव लग चुका था तो भी वे साहस कर सावधान होकर जिनका ध्यान स्मरण करने लगे और अन्तमें संन्यास धारण कर स्वर्गमें गये। कितने मिथ्यात्व-विष चढ़े हुए मोही योद्धा शस्त्रकी चोंटको न सह सकनेके कारण त्राह त्राह कर मरे और पापके उदयसे दुर्गतिमें गये। जिन मानी योद्धाओंको मालिकने बड़े आदर-मानके साथ रक्खा था उन्होंने उस ऋणको चुकानेके लिए ही मानों जी झोंककर लड़ाई लड़ी। कितने वीर योद्धाओंने अपने शूरताके गर्व और जीवन-रक्षाके वश होकर शत्रु-संहारक बड़ा ही घोर युद्ध किया। नाना तरहके शस्त्रों द्वारा जो इन दोनों ओरकी सेनाका घनघोर संग्राम हुआ वह राम-रावणके युद्धसे कम नहीं हुआ। इस युद्धमें जरासंधकी सेनाने कृष्णकी सेनाको पीछा हटा दिया। यह देखकर कृष्ण क्रोधसे काँप उठे। वे सब सेनाको लेकर यमकी तरह लड़नेको तैयार होगये। उनकी सेनाके घोड़ोंकी टापसे जो धूल उड़ी उससे आकाश छा-गया। युद्धके नगाड़ोंके शब्दसे दिशायें भर गईं। कृष्णने हाथी, घोड़े और योद्धाओंको खूब काट डाला और बड़े बड़े रथोंको बातकी बातमें छिन्न भिन्न कर दिया। इस प्रलयको देखकर शत्रुसेनामें त्राह त्राह मच गया। स्याद्वादी जैनी जैसे अपनी विद्या द्वारा मिथ्या मतोंका खण्डन कर उन्हें जीत लेता है उसी तरह कृष्णने जरासंधकी सेनाको बड़ी जल्दी जीत लिया। यह देखकर जरा-

संधको बड़ा क्रोध आया। उसने कृष्णसे कहा—अरे ओ ग्वालके छोकरे! गोकुलमें दूध पी-पीकर तू हाथीकी तरह मस्त होगया है, पर जान पड़ता है तू मेरे प्रभावको नहीं जानता। अपनी चंचलतासे तू समुद्रमें घुस गया है, पर अब तू मेरे सामनेसे जीते जी नहीं जा सकता। यदि तू मेरे पाँवोंमें पड़कर प्राणोंकी भीख माँगे तो मैं कह सकता हूँ कि तू जाकर तेरे विना रोती हुई गौओंको धीरज बँधा। जरासंधके ये अभिमान भरे बचन सुनकर सिंह समान निर्भय कृष्णने उससे कहा— ओ अन्धे जरासंध! तू देखकर भी नहीं देखता है, यह बड़ा आश्चर्य है। देख, जिसने काँसेके वरतन समान कंसको टुकड़े टुकड़े कर दिया, जिसने चाणूर सदृश भयंकर मल्लको बातकी बातमें चूर डाला, उसे तू ग्वालका छोकरा वतलाता है? अस्तु, मैं छोकरा ही सही, पर याद रख आज मैं भी प्रतिज्ञा करता कि जबतक मैं तेरे टुकुड़े टुकड़े न कर दूँगा तबतक अपने भाई बलदेवके चरणोंको न देखूँगा—उन्हें अपना मुँह न दिखलाऊँगा। तू वृथा बकवाद क्यों कर रहा है? तुझमें यदि शक्ति है—बल है तो मुझपर आक्रमण कर। इस प्रकार परस्पर अपनी अपनी तारीफ करते हुए जरासंध और कृष्ण मस्त हाथीपर बैठकर यमके समान एकपर एक झपटे और बाण-बरसा करने लगे। जरासंधने तब महा बलवान् श्रीकृष्णके प्राण-संहारक तीखे बाणोंको न सह सकनेके कारण बहुरूपिणी नाम विद्याको याद किया।

उस विद्याने अपनी मायासे तव एक वड़ी भारी भूतोंकी भयंकर सेना तैयार की । उसके दाँत तीखे, बड़े और आँखें लाल थीं । वाल ऊपरकी ओर उड़ते हुए और पीले थे । वह भयंकर हँसी हँस रही थी । मायासे उसने अनेक तरहके रूप धारण कर रक्खे थे । उस सेनाने कृष्णकी सारी सेनामें खलबली डाल दी—वड़ा कष्ट दिया । शूरवीर कृष्ण यह देखकर उस भूतोंकी सेनामें घुस गये और उसे चारों ओरसे मार मार कर भगाने लगे । कृष्णके ऐसे बलको देखकर वह विद्या जी बचाकर सूर्योदयसे नष्ट हुई रातकी तरह भाग छूटी । यह देख-कर जरासंधने क्रोधित होकर कृष्णसे कहा— ओ ग्वालके अजान बालक ! इन भूतोंको भगाकर शायद तू अभिमानसे फूल गया होगा । ये चंचल भूत भाग जायँ या रहें इनसे मुझे कुछ लाभ या हानि नहीं । पर अव देख मैं अपने हाथोंसे तेरा सिर काटता हूँ । यह सुनकर वीररस चढ़ा हुआ कृष्ण निर्भय होकर यमकी तरह जरासंधके सामने जा खड़ा होगया । जरा-संधने तव क्रोधमें आकर कालचक्रके समान चक्रको घुमाकर कृष्णके ऊपर फैंका । सूर्य सदृश चमकता हुआ वह चक्ररत्न पुण्यसे कृष्णकी प्रदक्षिणा कर उनके हाथमें आगया । उस चम-कते हुए चक्ररत्नको हाथमें लेकर कृष्णने जरासंधसे कहा- अव भी मेरे हाथमें वात है, इसलिए मैं कहता हूँ कि सव पृथ्वी मुझे सौंपकर तू छल-कपटरहित प्रभु वलदेवकी शरणमें चला आ । तू वृथा जीव-संहारक कालके मुँहमें पड़कर कष्ट मत उठा ।

कृष्णके इन मर्मभेदी वचनोंको सुनकर जरासंध बोला-अरे ओ ओछे कुलमें पैदा हुए नीच! तू सियाल होकर मेरे सदृश विकराल सिंहको डर दिखलाता है? मैं जानता हूँ कि तू, तेरा क्षुद्र पिता और तेरा दादा कौन था। इसीलिए मैं तुझे पृथ्वी अवश्य दूँगा। माँगते हुए तुझे शर्म भी न लगी? और क्योंरे, जान पड़ता है इस कुम्हारके चक्र-समान चक्रको पाकर तू फूल गया है। बहुत कहनेसे कुछ लाभ नहीं। देख, इसी तलवारसे मैं तुझे अभी ही मौतके मुँहमें पहुँचा देता हूँ। यह सुनकर कृष्णके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने तब उसी समय चक्रसे जरासंधका सिर काट डाला। उस मदान्ध जरासंधके मरते ही कृष्णकी सेनामें जयजयकारकी महान् ध्वनि उठी। नगाड़े बजने लगे। उससे लोगोंको बड़ी खुशी हुई। देव-देवाङ्गनाओंने 'नन्द' 'जीव' आदि कहकर कृष्णके ऊपर फूलोंकी बरसा की।

इसके बाद कृष्ण चक्ररत्नको आगे करके बलदेव आदिके साथ दिग्विजय करनेको निकले। उनके आगे आगे बजते हुए नगाड़े सबको दिग्विजयकी सूचना देते जा रहे थे। मार्गमें उन्होंने अनेक देशों और बड़े बड़े राजोंको अपने वश किया। इस-प्रकार विजय करते हुए कृष्ण, यादवगण, अन्य बड़े बड़े राजे-महाराजे तथा सेनासहित पीठगिरि नाम पर्वत पर आये। उस पर्वतपर कोटिशिला नामकी एक बड़ी भारी शिला थी। बलदेव वगैरहने भक्तिसे उसकी पूजा की। उस समय

कृष्णके बलकी सब राजोंको प्रतीति हो, इस लिए बलदेवने कृष्णसे उस शिलाके उठानेको कहा । उनकी आज्ञा पाते ही कृष्णने बड़े सहजमें उतनी बड़ी शिलाको झटसे उठा दिया । हाथोंसे उपर उठाई हुई वह शिला उस समय छत्र-सदृश जान पड़ी । कृष्णके ऐसे बलको देखकर खुश हुए बलदेवने बड़े जोरका सिंहनाद किया । उसे सुनकर आये हुए पर्वत-निवासी सुनन्द नाम यक्षने कृष्ण और बलदेवकी पूजा की तथा कृष्णको एक नन्दक खड्ग (तरवार) भेंट किया । इसके बाद देवो, विद्याधरों तथा अन्य राजोंने तीर्थजलके भरे सोनेके एक हजार आठ कलशोंसे " ये नवमें नारायण और प्रतिनारायण हैं. " ऐसा कहकर बड़े प्रेमसे उनका अभिषेक किया और बादमें अच्छी अच्छी वस्तुयें उन्हें भेंटकर उनकी पूजा-सत्कार किया ।

यहाँसे गंगाके किनारे किनारे होकर पूर्वकी ओर जाते हुए चक्रवर्ती कृष्ण गंगाद्वारके पासवाले बागमें पहुँचे । वहाँ उन्होंने जयजयकारके साथ अपनी सेनाका पड़ाव किया । इसके बाद कृष्ण रथपर चढ़कर दरवाजेके रास्ते निर्भयताके साथ समुद्रमें घुसे । वहाँ कुछ दूर खड़े रहकर उन्होंने एक अपने नामका बाण मागध नाम व्यंतर देवताको लक्ष्य कर चलाया । वह मागधव्यन्तर उस बाणको देखकर बड़े जोरसे चिल्लाया । इसके बाद जब उसे जान पड़ा कि पुण्यवान् कृष्ण यहाँ आये हुए है, तब उसने एक रत्नहार, मुकुट, कुंडलकी जोड़ी और

वह बाण इन सबको लाकर कृष्णकी भेंट किया और स्तुति की। समुद्रवासी बलवान् देवता भी कृष्णका नौकर होगया, यह कम आश्चर्यकी बात नहीं। पुण्यसे क्या नहीं होता।

यहाँसे प्रसन्नताके साथ निकलकर वह उदयशाली जितशत्रु कृष्ण सब सेनाको लेकर 'वैजयन्त' नाम द्वारपर पहुँचा। वहाँ उन्होंने वरतनु नाम देवको पराजित किया। उसने रत्नोंके कड़े, अंगद, चूड़ामणि नाम हार, और एक करधनी श्रीकृष्णके भेंट की और प्रणाम कर वह अपने स्थान चला गया। पुण्यसे कौन नहीं पुजता। यहाँसे कृष्ण पश्चिमकी ओर 'सिन्धुद्वार' पर गये। वहाँ समुद्रमें प्रवेश कर उन्होंने प्रभास नाम देवको जीता। उसने संतानक नाम एक मोतियोंकी माला, सफेद छत्र, तथा और भी बहुतसे वस्त्राभरण श्रीकृष्णके भेंट किये।

यहाँसे सिन्धुनदीके किनारे किनारे जाते हुए कृष्णने पश्चिमके राजोंको जीता और उनसे अनेक प्रकारके जवाहरात भेंट लेकर वे पूर्वकी ओर बढ़े। इधर उन्होंने विजयार्द्धपर्वतकी दोनों श्रेणीके राजोंको जीतकर उनसे नाना धन रत्न तथा देवाङ्गनासी सुन्दरी कन्याओंको प्राप्त किया।

इसके बाद रास्तेमें अन्य अनेक राजोंको जीतते हुए और उनसे भेंटमें प्राप्त रत्नादि श्रेष्ठ वस्तुओंको लेते हुए वे म्लेच्छ खंडमें आये। म्लेच्छखण्डको भी जीतकर वहाँके राजोंसे उन्होंने खूब धन-दौलत प्राप्त की। इस प्रकार नवमें नारायण,

प्रतिनारायण कृष्ण और वलदेव पुण्यके उदयसे विद्याधर और नर-राजोंको अपने वश करते हुए आधी पृथ्वीकी लक्ष्मीके स्वामी हुए ।

इस प्रकार विजयलाभ कर दोनों भाई यादव-राजों और अपनी सब सेनाके साथ बड़े आनन्द और सन्तोषसे द्वारिकाकी ओर लौटे । उनके आगमनसे द्वारिका बड़ी सजाई गई । घर-घरपर धुजायें और तोरण टाँगे गये । बड़े भारी उत्सवके साथ उन्होंने द्वारिकामें प्रवेश किया । उस समय वे दोनों भाई ऐसे जान पड़ते थे—मानों चलते-फिरते नीलगिरि और कैलासपर्वत है । मोतियोंकी माला जिनपर लटक रही है ऐसे छत्र और धुजाओंसे वे शोभित थे । उनपर सुन्दर चँवर ढुरते जाते थे । चारण लोग उनके उज्ज्वल यशका वखान करते जा रहे थे । देव, विद्याधर तथा अन्य बड़े बड़े राजे-महाराजे उनकी सेवामें उपस्थित थे । उनके मुख-कमल खिल रहे थे । धुजायें उनकी सिंह और गरुड़के चिह्नसे शोभित थीं । उन्हें देखकर लोग वड़े खुश होते थे । सुन्दर और बहुमूल वस्त्राभरण पहरे तथा खूब दान करते हुए वे ऐसे देख पड़ते थे—मानों दो नये और चलने-फिरनेवाले कल्पवृक्ष आये हैं ।

इसके वाद द्वारिकामें सब राजे, देव तथा विद्याधरोंने मिलकर बड़े प्रेमसे उन्हें दिव्य सिंहानपर बैठाया और फिर जयजयकार, गीत, संगीत, गाजे-वाजेके साथ पवित्र जलके भरे एक हजार आठ सोनेके सुन्दर कलशोंसे उनका अभि-

षेक किया। इसके बाद "इन त्रिखण्ड-पृथ्वीमण्डलके स्वामीको हम अपना प्रभु स्वीकार करते हैं," ऐसा कहकर उन सबने बड़े आनन्दसे उन्हें वस्त्राभूषण धारण कराये और इनके पट्ट-बन्ध बाँधा। पुण्यसे जीवोंको क्या प्राप्त नहीं होता।

अब उनके वैभवका कुछ वर्णन किया जाता है। उनकी आयु एक एक हजार वर्षकी थी। उनका शरीर दस धनुष–कोई पैंतीस हाथ ऊँचा था। कृष्णका शरीर नीला और बलदेवका सफेद था। गणबद्ध नामके कोई आठ हजार देवता और सब विद्याधर, तथा सोलह हजार मुकुटबन्ध राजे और त्रिखण्डमें रहनेवाले अन्य सब देवगण उनकी सदा सेवा किया करते थे। महात्मा बलदेवके रत्नमाला, गदा, हल और मूसल ये चार महान् रत्न थे। इनके एक एक हजार देवता रक्षक थे। और आठ हजार बड़ी खूबसूरत, पुण्यवती और शील वगैरह गुणोंसे युक्त स्त्रियाँ थीं।

श्रीकृष्णको चक्र, शक्ति, गदा, शंख, धनुष, दंड और सुदण्ड ये सात रत्न प्राप्त थे। शत्रुओंको ये क्षणभरमें नष्ट कर-नेवाले थे। इनके भी एक एक हजार देव रक्षक थे। कृष्णके आठ मनोहर पट्टरानियाँ थीं। उनके नाम थे–सत्यभामा, रुक्मणी, जांबवती, सुशीला, लक्ष्मणा, गौरी, गान्धारी और पद्मावती। कृष्णकी सोलह हजार रानियोंमें ये ही आठ प्रधान रानियाँ थीं। इन हाव-भाव-विलास तथा रूप-सौभाग्यकी खान

अपनी सब रानियोंसे कृष्ण लता-मण्डित कल्पवृक्षकी तरह शोभा पाते थे।

अब इन दोनों भाइयोंके इकट्ठे वैभवका वर्णन किया जाता है। श्रेष्ठ सम्पदासे भरे हुए कोई सोलह हजार तो बड़े बड़े इनके देश थे; ९८५० द्रोण थे; नानारत्नोंसे भरे २५०० पत्तन थे; पर्वतोंसे घिरे हुए और मनचाही वस्तु जहाँ प्राप्त हो सकती है ऐसे १२००० कर्वट थे; और बावड़ी तालाब, बाग आदिसे शोभित १२००० ही मटंब तथा ८००० खेटक थे; लोगोंके पुण्यसे सदा छहों ऋतुके फल-फूलोंसे युक्त ४८०००००० क्रोड़ गाँव थे; सुन्दर और बड़े बड़े ऊँचे ४२००००० हाथी थे; और ४२००००० लाख ही रथ थे; अनेक देशोंके पँच-रंगी ९००००००० क्रोड़ घोड़े और ४२००००००० क्रोड़ खड्गधारी वीरगण थे। इत्यादि पुण्यसे प्राप्त सम्पदाका सुख भोगते हुए कृष्ण-बलदेव बड़ी कुशलतासे प्रजा-पालन करते थे। उन्होंने सब शत्रुओंको जीत लिया था। यादव-वंश रूपी आकाशके वे बड़े प्रतापी सूरज और चाँद थे। सब सुर-असुर जिनके पाँव पूजा करते हैं उन नेमिजिनसे मण्डित

जिसके चारों ओर बाड़ लगी हुई हो उसे 'ग्राम' या 'गाँव' कहते हैं। जिसके चारो ओर चार बड़े दरवाजेवाला कोट हो उसे 'नगर' कहते हैं। नदी और पर्वतसे जो घिरा हो वह 'खेट' कहाता है। पर्वतसे घिरे हुएको 'कर्वट' कहते हैं। पाँच गाँवोंसे युक्त 'मटंब' कहाता है। जिसमें रत्न उत्पन्न होते हों वह 'पत्तन' है। समुद्र-किनारेसे घिरे हुएको द्रोण कहते हैं। पर्वतपर बसे हुएको 'संवाहन' कहा है।

होकर वे बड़ी शोभाको प्राप्त होते थे। एकको एक प्राणोंसे अधिक प्यारे थे। त्रिखण्डका राज्य वे बड़ी अच्छी तरह करते थे। उनका परिवार बहुत बड़ा था। दिव्य-रत्नमयी मुकुटको पहरे हुए वे बडे शोभते थे। श्रेष्ठसे श्रेष्ठ धन-दौलत उन्हें प्राप्त थी। वे बड़े सुन्दर और भाग्यवान् थे। इस प्रकार पूर्व पुण्यसे प्राप्त भोगोंको वे बड़े आनन्दसे भोगते थे। वे दोनों भाई ऐसे जान पड़ते थे—मानों बलवान् दिव्य शरीर-धारी इन्द्र और उपेन्द्र पृथ्वीको भूषित करनेको स्वर्गसे आये हुए है।

ऊपर जिस श्रेष्ठ सम्पदाका वर्णन किया गया वह तथा अन्य भी जगत्के हितकी सामग्री जिसके द्वारा प्राप्त हो सकती है वह जिनशासन चिरकाल तक बढ़े।

जो त्रिलोकके गुरु हैं, जिन्हें देवता नमस्कार करते है, जिनने मोक्ष देनेवाले धर्मका भव्यजनोंको उपदेश किया, मुनि लोग जिन्हें प्रणाम करते हैं, जिनके द्वारा सत्पुरुष सुख-लाभ करते हैं, जिनका सुयश जगत्में व्याप्त है और जो अच्छे अच्छे निर्मल गुणोंके धारक है वे नेमिजिन सुख देते हुए संसारमें चिरकाल तक रहें।

इति अष्टमः सर्गः।

नौवाँ अध्याय।

नेमिजिनका निष्क्रमण-कल्याण।

शारद ऋतुका समय था। सरोवर सत्पुरुषोंके वचन समान निर्मल जलसे भरे हुए थे। उनमें कमल फूल रहे थे। कृष्ण अपनी रानियोंके साथ मनोहर नाम सरोवरपर जल-विहार करनेको गये। वहाँ उन्होंने बड़ी देर-तक जलक्रीड़ा की। कृष्ण द्वारा जल छींटी गईं स्त्रियाँ ऐसी देख पड़ती थीं—मानों नीले मेघमें बिजलियाँ चमक रही हैं। और उधर जो रानियोंने कृष्णपर जल छींटा उससे वे ऐसे देख पड़े जैसे मेघमालाने नीलगिरिको सींचा हो। जल छींटनेके कारण किसी रानीके मोतियोंके हारसे टपकती हुई जलकी बूँदें रत्न-वर्षाके सदृश जान पड़ती थीं। कृष्ण द्वारा छींटे गये जलकी चोटसे किसी रानीके कर्णफूल गिर पड़े—मानों जड़ कृष्णकी मारसे वे शर्मिन्दा होकर गिर पड़े हैं। संस्कृतमें 'ड' 'ल' में भेद नहीं माना जाता। इस कारण ऊपर एक जगह 'जल' और एक जगह 'जड़' अर्थ किया गया है। जो रानियाँ बहुत महीन वस्त्र पहरे हुई थीं वे जल छींटनेसे फेनसहित कमलिनियोंके समान देख पड़ती थीं। उनके वक्षस्थलोंपर जो केसर वगैरह लगी हुई थी, वह सब सरोवरमें धुल गई। जान पड़ा—सरोवर पीले वस्त्रसे ढक दिया गया। चन्द्रमाके समान गौरवर्ण बलदेवने भी इसी

सरोवरपर आकर अपनी रानियोंके साथ जल-क्रीड़ा की । ये लोग जल क्रीड़ा कर रहे थे । इसी समय सत्यभामा और नेमिजिनमें जलकेलि होने लगी । अन्तमें नेमिजिन जब जलसे बाहर हुए तब उन्होंने सूखा वस्त्र पहरकर उस गीले वस्त्रको सत्यभामाके पास फैंक दिया और हँसी-हँसीमें कह दिया कि जरा इसे धो तो दो। यह देखकर सत्यभामा अभिमानमें आकर नेमिजिनसे बोली-क्यों. आप नाग-शय्यापर चढ़े हैं ? तथा आपने शार्ङ्ग नाम धनुष चढ़ाया है और शंख पूरा है, जो मैं आपका वस्त्र धोदूँ । इसपर सत्यभामासे नेमिजिनने कहा-क्यों, क्या कोई यह बड़े साहसका काम है ? सत्यभामा बोली-यदि आप इसे कोई बड़े साहसका काम नहीं बताते हैं तो जरा आप भी तो इन सब कामोंको कर दीजिए । सत्य है कोई कोई मूर्ख स्त्री गर्वसे ऐसी फूल जाती है कि फिर उसे कार्य-अकार्य और हित-अहितका बिल्कुल ज्ञान नहीं रहता है । जिन्हें देवता, राजे-महाराजे पूजते हैं, जो देवोंके भी देव और जगद्गुरु हैं, और जिनके पाँवोंकी धूल भी यदि सिरपर लगाली जाय तो सब पाप नष्ट हो जाते हैं उनका कोई काम क्या न कर देना चाहिए ? इन्द्रादि देवता भी जिनकी सेवा करनेकी निरन्तर इच्छा किया करते हैं उनकी सेवा निधिकी तरह बिना पुण्यके प्राप्त नहीं होती । सत्यभामाके ऐसे वचन सुनकर नेमिजिनने कहा-अच्छी बात है मैं अभी ही

जाकर उन सब कामोंको करता हूँ । इतना कहकर नेमिजिन शहरमें आगये । इसके बाद उन्होंने नागमणिके तेजसे प्रकाशित नागशय्यापर चढ़कर उस बिजलीके सदृश धनुषको चढ़ा दिया और जिसके शब्दसे सब दिशायें शब्दपूर्ण हो जाती हैं उस शंखको भी पूर दिया । उनके उस धनुषकी टँकार और शंख-नादसे पृथ्वी काँप गई । देवतागण सन्देहमें पड़ गये । आकाशमें चाँद, सूरज, विद्याधर, व्यन्तरदेवता आदि भयसे घबराकर परस्परमें पूछने लगे कि 'यह क्या हुआ' 'यह क्या हुआ'? इसके बाद वे सब मिलकर पृथ्वीपर आये । उनके आनेसे पृथ्वी चल-विचल होगई । पर्वत हिल उठे । समुद्रनें मर्यादा छोड़दी दिग्गज । स्तंभोंको उखाड़-उखाड़कर भाग छूटे—जैसे दुष्ट कुपुत्र माता-पिता और गुरुजनकी आज्ञाको तोड़कर भागजाते हैं । घोड़े भयसे घबराकर चारों दिशाओंमे भाग गये । प्रजा किंकर्तव्य-मूढ़ होगई । द्वारिकामें इस प्रकार घबराहट और हलचल देखकर कृष्ण भी भयसे कुछ आकुलसे होगये । उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । नौकरोंसे उन्होंने कहा—जाकर देखो कि यह हल-चल क्यों मची हुई है । उन्होंने देख आकर कृष्णसे कहा—महाराज, यह सब करतूत अपने सुरासुर-पूज्य नेमिकुमारकी है । उन्होंने आयुध-गृहमें जाकर सहज ही नागशय्यापर चढ़कर धनुष चढ़ा दिया और शंख पूर दिया । इसी कारण यह सब लोक काँप उठा है । महाराज, महारानी

सत्यभामाजीने उन्हें अन्य साधारण मनुष्यकी सदृश समझकर उनकी धोतीको न धो दिया, किन्तु गर्वमें आकर उलटा उनसे कहा—क्या आपने नागशय्यापर आरोहण किया है, धनुष चढ़ाया है और शंख पूरा है जो मैं आपका कपड़ा धोदूँ ! महारानीजीके इन मर्मभेदी वचनोंको सुनकर नेमिजिनको अच्छा न जान पड़ा। इसी कारण उन्होंने यह सब किया है। छिपानेकी बातोंको भी मूर्ख स्त्रियाँ क्रोधमें आकर सबपर प्रगट कर देती है। यह सुनकर कृष्ण बड़े घबराये। उन्होंने उसी समय कुसुमचित्रा नाम सभामें जाकर बलदेवसे कहा—कुमार नेमिजिन बड़े बलवान् और तेजस्वी हैं। वे युद्धमें आपको और मुझे बातकी बातमें जीतकर अपना सब राज्य क्षणभरमें छीन लेंगे। इस कारण कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे वे किसी निर्जन वनमें भेज दिये जायँ। यह सुनकर बलदेव बोले—भाई, सुनो-नेमिकुमार चरम-शरीरी हैं, जगद्गुरु हैं, समुद्रविजय महाराजके वंशाकाशके चन्द्रमा ह, मोक्ष जानेवाले हैं, देवतागण तक उनकी पूजा-भक्ति करते हैं, और वे बड़े ही मंदरागी हैं इस कारण वे किसीका कुछ बिगाड़ नहीं करेंगे। यह राज्य उन्हें तो तृणसे भी तुच्छ जान पड़ता है। वे तो हम ही लोग ऐसे हैं जिन्हें राज्य एक बड़े भारी महत्त्वकी वस्तु मालूम देती है। वे तो थोड़ासा भी कोई ऐसा वैराग्यका कारण देख लेंगे तो उसी समय दीक्षा लेकर योगी बन जायँगे। यह सुनकर मायावी कृष्ण राज्यके लोभसे उग्रवंशके

सूरज उग्रसेन महाराजके पास गये और कपटसे वे उग्रसेनसे बोले—महाराज, मेरी इच्छा है कि आपकी सुन्दरी राजकुमारी राजीमतीका नेमिजिनके साथ ब्याह कर दिया जाय। इसपर उग्रसेनने कहा—हे त्रिखण्डेश, हे माधव, आप हमारे पालनकर्त्ता प्रभु हैं। इस कारण त्रिलोकमें जो अच्छी चीज है, न्यायसे वह आपहीकी है। उसके लिए चरण-सेवकोंको पूछनेकी कोई जरूरत नहीं देख पड़ती। और इसपर भी 'वर' त्रिजगत्स्वामी नेमिजिन सदृश हैं तब तो कहना ही क्या? ऐसा गुणवान् वर बिना पुण्यके थोड़े ही मिल जाता है। उन त्रिलोकनाथके लिए मैं बड़ी खुशीसे अपनी राजीमतीको देता हूँ। उग्रसेन महाराजके अमृतसे वचन सुनकर कृष्ण बड़े सन्तुष्ट हुए। उन्होंने तब उसी समय पँचरंगी रत्नोंकी कान्तिसे सब ओर प्रकाश कर देनेवाली सोनेकी सुन्दर अँगूठीको राजीमतीकी उँगलीमें पहरा दिया। इसके बाद ही कृष्णने बड़े दानमानपूर्वक नेमिजिनके ब्याहकी तैयारी की। रत्नोंकी पच्चीकारीके कामका मंडप तैयार किया गया। उसमें सोनेके खंभे लगाये गये। अच्छे अच्छे सुन्दर और बहुमूल्य रेशमी वस्त्रोंसे वह सजाया गया। उसमें जगह जगह जो छत्र, चँवर, मोतियोंकी झालर, फूलमाला आदि वस्तुयें लगाई गईं उसे देखकर सबका मन बड़ा मोहित होता था। वह सुन्दर मण्डप नेमिजिनके यशःपुंजके समान देख पड़ता था। उसमें जो सदा दान दिया जाता था—उससे वह कल्पवृक्षसा जान पड़ता था। उसमें

एक बड़ी लम्बी-चौड़ी वेदी बनी हुई थी। उसपर मोतियों और रत्नोंकी धूलसे रंगावली बनाई गई थी। जिसे देख-कर लोगोंको बड़ा आनन्द होता था—वह वेदी ऐसी जान पड़ती थी मानों उसे स्वयं लक्ष्मीने आकर बनाई है।

उस मण्डपमें सत्पुरुषोंके मन-समान निर्मल एक बड़ा लम्बा-चौड़ा सोनेका पट्टा रक्खा गया। उसके चारों ओर मंगलद्रव्य लगाये गये। देवाङ्गना और स्त्रियाँ वहाँ गीत गाने बैठीं। उस समय नाना प्रकार उत्सवके साथ परिवारके लोगोंने सुरासुर-पूज्य श्रीनेमिकुमार और राजीमतीको उस पट्टेपर बैठाया। खूब बाजे-गाजे और जयजयकारके साथ उन वरके-वधू ऊपर केसरसे रंगे चावल क्षेपणकर उन्हें आशीर्वाद दिया गया। उस उत्सवमें दिव्य वस्त्राभरण पहरे हुए वे वर-वधू लक्ष्मी और पुण्यके पुंज-समान जान पड़े। यह सब क्रिया हुए बाद तीसरे दिन पाणि-जलदान करना ठहरा। उस समय आगे कुगतिमें जानेवाले लोभी कृष्णने राज्य छिन जानेके डरसे सोचा—इस समय मैं नेमिजिनको कोई ऐसा वैराग्यका कारण दिखलाऊँ जिससे वे विषयोंसे उदासीन—विरक्त होकर दीक्षा लेजायँ। यह मनमें सोचकर कृष्णने बहेलियोंसे बहुत मृगोंको मँगवा कर एक जगह इकट्ठे करवा दिये और उनके चारों ओर काँटेकी बाढ़ लगवा दी। और उन लोगोंसे कृष्णने कह दिया कि देखो, नेमिकुमार इस ओर घूमनेको आवें

तब तुम उनसे कहना कि आपकी शादीमें जो
लोग आये हुए हैं उनके लिए कृष्ण महाराजने इन मृ
मँगवाया है। इतना कहकर कृष्ण चले गये। अज्ञानी जन
राज्य-लोभसे अन्धे बनकर कौन पाप नहीं कर डालते! जैसा
कि कृष्णने नेमिजिनसे छल किया।

दूसरे दिन नेमिजिन अच्छे वस्त्राभरण, फूलमाला
आदिसे खूब सजकर घूमनेको निकले। उनके साथ हाथी,
घोड़े और बहुतसे वीरगण थे। बड़े बड़े राजों-महाराजोंके राज-
कुमार उन्हें घेरकर चल रहे थे। नेमिजिन चित्रा नाम रत्नमयी
पालखीमें बैठे हुए थे। छत्र, धुजायें उनपर शोभा दे रही थीं।
चन्द्रमाकी कान्ति-समान उज्ज्वल चँवर उनपर ढुरते जा
रहे थे। चारण और गन्धर्वगण उनका यश गाते जाते थे।
नाना तरहके बाजोंके शब्दसे दिशायें शब्दमय होगई थीं।
'जय' 'नन्द' 'जीव' आदि जयजयकार हो रहा था।
अपनी श्रेष्ठ-शोभासे जिनने इन्द्रको भी जीत लिया था।

नेमिजिन वहाँ आये जहाँ कृष्णने मृगोंको इकट्टा करवा
रक्खा था। उन्होंने देखा कि बेचारे मृग भूख-प्यासके
मारे मर रहे हैं—बिलबिला रहे हैं और मूर्च्छा खा-खाकर
इधर उधर गिर-पड़ रहे हैं। उनकी यह कष्ट-दशा देखकर
भगवान्‌ने उनके रक्षक लोगोंसे पूछा—ये मृग यहाँ क्यों रोके
गये और क्यों इन्हें इस तरह इकट्ठे बाँधकर कष्ट दिया जा
रहा है? वे लोग हाथ जोड़कर दयासागर भगवान्‌से बोले—

प्रभो, आपके व्याहमें जो म्लेच्छ राजे लोग आये है उनके लिए कृष्ण महाराजने इन्हें यहाँ इकट्ठे करवाये हैं। उनके इन वचनोंको सुनकर नेमिजिनका मनरूपी वृक्ष दयाजलसे लहलहा उठा। उनने सोचा--यह विपरीत, महानरकमें ले-जानेवाला पशु-वध हमारे कुलमें आज तक कभी न-हीं हुआ। यह पापी भीलोंका काम है। इसके वाद उन्होंने अवधिज्ञानसे जान लिया कि यह सब छल-कपट कृष्णने किया है। उसे इस वातका बड़ा डरसा होगया है कि कहीं नेमिजिन मेरा राज्य न छीनलें। और इसी कारण उसने ऐसे बुरे कामको भी करडाला। इस असार संसारको धिक्कार है जिसमें मिथ्यात्व-विष चढ़े हुए तृष्णातुर लोग सैकडों पाप कर डालते हैं और क्रोध-लोभ-मान-माया--आदि-से ठगे जाकर हिंसा, झूठ, चोरी वगैरह करने लगते हैं। उनके परिणाम वड़े खोटे और सदा पापरूप रहते है। वे फिर पंचेन्द्रियोंके विषयों और सात व्यसनोंमें फँसकर दुःखके समुद्र घोर नरकमें पड़ते है। वहाँ वे काटे जाते हैं, छेदे जाते हैं, तीखे आरेसे चीरे जाते हैं, कढ़ाईमें तले जाते हैं, सूलीपर चढ़ाये जाते है, घनोंसे कूटे जाते हैं, भाड़में भुने जाते हैं, सेमलके काँटेदार वृक्षकी नोखसे घिसे जाते हैं, भूखे-प्यासे मारे जाते हैं और ज्वर वगैरह रोगों द्वारा कष्ट दिये जाते हैं। इस प्रकार पूर्वजन्मके वैरसे संक्लिष्ट-असुर-जातिके दुष्ट देवों द्वारा दिये गये नाना तरहके दुःखोंको चिरकाल तक पापके उदयसे वे सहन करते रहते हैं।

इसके बाद पशुगतिमें भी उन्हें वध-बन्धन आदिका मह दुःख भोगना पड़ता है। मनुष्यगतिमें भी सुख नहीं है वहाँ वे जन्मान्तरकी पापरूपी आगमें तप्त होकर अच्छी वस्तु नष्ट हो जाने और बुरी वस्तुके प्राप्त होनेका महान् दुः उठाते हैं। किसीके पुत्र नहीं, तो किसीके स्त्री नहीं। को दरिद्री है, तो कोई रोगी है। किसीके पास खानेको नहीं, तं किसीके पास पहरनेको नहीं है। इस प्रकार सबको कोई न कोई प्रकारका दुःख है ही। देव बेचारे मानसिक दुःखसे दुखी हैं। दूसरे देवोंकी सम्पदा देखकर मिथ्यादृष्टि देवोंको बड़ा दुःख होता है।

और यह शरीर मल-मांस-रक्त आदिसे भरा हुआ हड्डियोंका एक पींजरा है। इसमें पैदा होनेवाले कफ आदिको देखकर घृणा होती है। यह बड़ा ही घिनौना, नाना रोगोंका घर, सन्ताप उत्पन्न करनेवाला और पापका कारण है। इसकी कितनी ही रक्षा करो, कितना ही घी-दूध-मिष्टान्न वगैरहसे इसे पोसो तो भी नष्ट हो जायगा। यह बड़ा ही निर्गुण है। दुर्जनकी तरह यह आत्माका कभी न हुआ न होगा। और ये पंचेन्द्रियोंके विषय-भोग ठगके भी महा ठग है। अग्नि जैसे ईन्धनसे तृप्त नहीं होती उसी तरह इन विषयोंसे जीवकी तृप्ति नहीं होती। जब संसारकी यह दशा है तब मुझे राग और कर्म-बन्धके कारण व्याह करके ही क्या करना है? वह तो सर्वथा त्यागने ही योग्य है। इस प्रकार वैराग्य-

भावनाका विचार कर लोक-श्रेष्ठ नेमिजिन आगे न जाकर वहींसे अपने महल लौट गये। त्रिलोकनाथ नेमिजिन महल-पर जाकर भी निश्चिन्त न बैठ गये। वहाँ उन्होंने बारह भावनाओंपर विचार किया।

संसारमें धन-दौलत, पुत्र-स्त्री, भाई-बन्धु आदि कोई स्थिर नहीं है—सब पानीके बुद्बुदेके समान क्षणमात्रमें नष्ट होनेवाले है। सम्पदा चंचल बिजलीकी तरह और जवानी हाथके छेदोंमेंसे गिरनेवाले जलके समान देखते देखते नष्ट हो जायगी। जो आज अपने बन्धु हैं—हितू हैं कल जिस कारणसे वे ही सब शत्रु बन जाते हैं वह राज्य महादुःख देनेवाला और क्षणभरमें नष्ट होनेवाला है। अज्ञानी मूर्ख लोग तो भी इन सबको नित्य—नष्ट न होनेवाले समझते हैं—जैसे धतूरा खानेवालेको सब सोना ही सोना दिखता है।

१—अनित्य-भावना।

संसारमें इस जीवको देवी-देवता, इन्द्र-धरणेन्द्र वगैरह कोई नहीं बचा सकता। खुद उन्हें ही आयुके अन्तमें मौतके मुँहमें पड़ना पड़ता है। तब अन्य साधारण जीवोंका तो कहना ही क्या है? माता-पिता, भाई-बन्धु आदि प्रिय जनके रहते भी जहाँ आयु पूरी हुई कि उसी समय मौतके घर पहुँच जाना पड़ता है—उसे कोई अपनी शरणमें रखकर नहीं बचा सकता। हाँ इस त्रिभुवनमें भव्यजनके लिए एक पवित्र शरण है और वह ज्ञान-दर्शन-चारित्रका लाभ।

इसके द्वारा वे जिस मोक्षको प्राप्त करेंगे फिर उन्हें कभी किसीकी शरण ढूँढ़ना न पड़ेगी ।

२—अशरण-भावना ।

यह संसार-वन मिथ्या-मोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त है, क्रोधरूपी व्याघ्रोंका घर है, मानरूपी बड़े भारी दुर्गम पर्वतसे युक्त है, मायारूपी गहरी नदी इसमें बह रही है, लोभरूपी सैकड़ों सर्प इसमें इधर उधर फिर रहे हैं, जन्म-जरा-मरण-रोग आदि भीलोंसे यह डरावना है, नीच-ऊँच-कुलरूपी वृक्षोंसे पूर्ण है, दुर्जनरूपी काँटोसे युक्त है, तृष्णारूपी चीते जिसमें इधर उधर घूँम रहे हैं और जो मत्सरतारूपी हाथियोंसे व्याप्त है, ऐसे संसारवनमें रत्नत्रयरूपी सुखमार्गको छोड़ देनेवाले मूर्खजन दुःसाध्य पर श्रेष्ठ मोक्षमार्गरूप नगरको कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? अर्थात् नहीं हो सकते। इस लिए उन्हें रत्नत्रय-मार्ग न छोड़ना चाहिए।

३—संसार-भावना ।

यह जीव एक ही पुण्य करता है, एक ही पाप करता है। और उनका सुख-दुःखरूप फल भी एक ही भोगता है। माता-पिता, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, सज्जन-दुर्जन आदि कोई भी इस संसारमें जीवके साथ नहीं जाता है। पापसे एक ही नरक जाता है, एक ही पशुगतिमें पैदा होता है, एक ही नीच-कुलमें जन्म लेता और पुण्यसे सुकुलमें उत्पन्न होता है, वह भी एक ही। न यही, किन्तु जो हितकारी दो प्रका-

रका रत्नत्रय आराधकर मुक्तिकान्ताका वर होता है वह सिद्ध भी एक ही जीव होता है ।

४—एकत्व-भावना ।

यह जीव कभी पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और वनस्पतिमें, कभी दो-इन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय, चार-इन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें और कभी मनुष्य गतिमें ऊँचे-नीचे कुलमें पैदा हुआ। कभी यह पापसे नरक गया और कभी पुण्यसे स्वर्गमें देव हुआ । आठ कर्मोंके सम्बन्धसे यह चारों गतियोंमें दूध-पानीके समान एक साथ मिलकर रहा। कभी पुण्यके उदयसे इसे सुख प्राप्त हुआ और कभी पापसे दुःख भोगना पड़ा। राग-द्वेष-क्रोध-मान-माया-लोभ आदिसे यह बड़ा ही मलिन रहा। यह सब कुछ होने पर भी यह उन वस्तुओंसे मिल नहीं गया—उनरूप नहीं हो गया। अपने स्वरूपसे यह सुवर्ण-पाषाणकी तरह सदा ही जुदा रहा—अन्यरूप ही रहा।

५—अन्यत्व-भावना ।

यह शरीर प्रगट ही अपवित्र है। इसका सम्बन्ध पाकर चन्दन, केसर, फूलमाला, वस्त्र आदि श्रेष्ठ वस्तुयें भी अपवित्र हो जाती हैं—जैसे लसुनकी गंधसे अन्य चीजें दुर्गन्धित हो जाती है। संसारमें आत्मा जो निरन्तर दुःख उठाया करता है उसका कारण—आधार भी यही शरीर है—जैसे जलका आधार या कारण पात्र होता है। इस प्रकार अपवित्र

शरीरमें भी मूर्खजन प्रेम करते हैं और फिर धर्मरहित होकर अनन्त दुःख भोगते हैं।

६—अशुचि-भावना।

छिद्रसहित नावमें जैसे बराबर पानी आया करता है उसी तरह संसारमें इस जीवके पाँच मिथ्यात्व, बारह अव्रत, पचीस कषाय और पन्द्रह योगों द्वारा निरन्तर आस्रव आता रहता है। यह बड़ा दुःखका कारण है। इसके द्वारा आत्मा लोहेके गोलेकी तरह नीचे ही नीचे जाता है—कुगतियोंमें जाता है। उससे फिर इसे अनन्त दुःख भोगना पड़ते हैं। इस कारण मिथ्यात्वको आदि लेकर जो सत्तावन प्रकारके आस्रव जीवोंको दुःख देनेवाले हैं उन्हें जानना चाहिए और जानकर उनके रोकनेका यत्न करना चाहिए।

७—आस्रव-भावना।

संवर जीवोंको सैकड़ों सुखोंका देनेवाला है। कर्मोंके आस्रव रोकनेको संवर कहते हैं। वह संवर मन-वचन-कायसे तीन गुप्ति, पाँच समिति, दस धर्म, बारह भावना, परीषह-जय और पाँच प्रकार चारित्रके धारण करनेसे होता है। पानी रोकनेको जैसे पुल बाँधा जाता है उसी तरह कर्मास्रव रोकनेको संवरकी आवश्यकता है।

८—संवर-भावना।

कर्मोंके थोड़े थोड़े नष्ट होनेको निर्जरा कहते हैं। वह सकामनिर्जरा और अकामनिर्जरा ऐसे दो प्रकारकी है।

सकामनिर्जरा मुनियोंके होती है और अन्य लोगोंके अकाम-निर्जरा । बाह्य तप और अभ्यन्तर तप द्वारा कायक्लेश सहकर कर्मोंकी निर्जरा करनी चाहिए । सब तपोंमें उपवास श्रेष्ठ तप है–जैसे सारे शरीरमें सिर । जिसने सन्तोषरूपी रस्सीसे मन-बन्दरको बाँधकर सम्यक्त्वसहित तप तपा संसारमें वही पुण्यवान् है । तप चिन्तामणि है । तप कल्पवृक्ष है । ज्ञानी लोगोंने उस तपका स्वरूप इच्छाका रोकना कहा है ।

९–निर्जरा-भावना ।

जिसमें जीवादिक पदार्थ सदा लोके जायँ–देखे जायँ वह लोक है । यह लोक अनादिनिधन और अनन्त है । उसके अधोलोक, मध्यलोक और उर्द्धलोक ऐसे तीन भेद हैं । यह चौदह राजू ऊँचा है । इसका घनाकार ३४३ राजू है । इसका आकार कमरपर हाथ धरकर पाँव पसारे खड़े हुए मनुष्यकासा है । यह जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योंसे भरा हुआ है । इसे घनवात, घनोदधिवात और तनुवात ये तीन वातवलय घेरे हुए हैं । इसका न कोई बनानेवाला है और न कोई नाश करनेवाला है । आकाशकी तरह यह भी सदासे है । इसके अन्त-शिखर पर सदा शुद्ध सिद्ध परमात्मा सम्यक्त्वादि आठ गुणसहित विराजे हुए हैं । इस प्रकार इस लोकका ध्यान–विचार वैराग्य बढ़ानेके लिए भव्यजनोंको अपने पवित्र मनमें सदा करना चाहिए ।

१०–लोक-भावना ।

'बोधि' नाम रत्नत्रयका है। इस रत्नत्रयमें पहला सम्यग्दर्शन बड़ा ही दुर्लभ है। जीव, अजीव-आदि पदार्थोंके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसे निःशंकित आदि आठ अंगसहित धारण करना चाहिए। यह रत्नकी तरह सब व्रत और सब क्रियाओंका भूषण है। ज्ञान आठ प्रकारका है। वह नेत्र-सदृश पदार्थोंका ज्ञान कराता है। चारित्र तेरह प्रकार है। यह व्यवहार रत्नत्रय कहलाता है। कर्म-मलरहित शुद्ध आत्मा निश्चय रत्नत्रयरूप है।

११—बोधि-भावना।

चतुर्गतिमें गिरते हुए जीवोंको न गिरने देकर उन्हें उत्तम सुख-स्थानमें रखदे वह धर्म है। संसारमें इसका लाभ बड़ा दुर्लभ है। सब प्रमादोंको छोड़कर दसलक्षणरूप इसी धर्मका सदा आराधन करना चाहिए। अथवा वस्तुके स्वभावको, जीवोंकी श्रेष्ठ दयाको और ऊपर कहे हुए रत्नत्रयको भी धर्म कहते है। इस प्रकार धर्मका संक्षेप स्वरूप कहा गया। यह सब प्रकारके सुख और स्वर्ग-मोक्षका देनेवाला है। भव्यजनको इस धर्मका सदा सेवन करना उचित है।

१२—धर्म-भावना।

इस प्रकार अनुप्रेक्षा वगैरहका विचार करते हुए त्रिजगहितकारी नेमिजिनने अपने पूर्वजन्मका भी हाल जान लिया। इसी समय पाँचवें ब्रह्मस्वर्गके अन्तमें रहनेवाले लोकान्तिक नाम देवता-गण जयजयकारके साथ भग-

वानके ऊपर फूलोंकी वरसा करते हुए वहाँ आगये। बड़ी भक्तिसे वे भगवान्को सिर नवाकर बोले—हे भगवन्, हे भुवनोत्तम, सत्य ही इस दुर्गम संसार-वनमें कहीं भी सुख नहीं है। सुख तो उसीमें है जिसे आपने मनमें करना विचारा है। प्रभो, आप संसार-समुद्रसे पार करनेवाले संयमको ग्रहण कीजिए और फिर केवलज्ञान प्राप्त करके जीवोंको बोध दीजिए। भगवान् आप स्वयंसिद्ध जिन है। हम सरीखे क्षुद्रजन आपको मोक्ष-मार्ग क्या वता सकते हैं।

परन्तु नाथ, आपकी चरण-सेवा करनेका हमारा नियोग है, वह हमें पूरा करना पड़ता है। प्रभो, संसारमें कोई ऐसा वक्ता या उपदेशक नहीं जो सूरजको प्रकाश करना बतला सके। उसी तरह आप-सदृश ज्ञानियोंको कौन प्रबोध दे सकता है। हे जगद्वन्धो, आप तो स्वयं ही केवलज्ञानी-भास्कर होकर उलटा हमीको प्रबोध दोगे। इस प्रकार भक्तिसे भगवान्की प्रार्थना कर वे सब देवतागण अपने अपने स्थान चले गये।

इनके वाद ही अन्य देवतागण तथा विद्याधर-राजे वगैरह आये। भक्तिसे प्रणाम कर उन्होंने भगवान्को जयजयकारके साथ सिंहासन पर बैठाया। नाना प्रकारके बाजे बजने लगे। देवाङ्गना सुन्दर गीत गाने लगीं। देवतोंने इसी समय नाना तीर्थोंके जलसे भरे सौ सुवर्ण-कलशोंसे भगवान्का अभिषेक किया। इसके बाद उन्होंने चन्दन, केसर आदि सुगन्धित

वस्तुओंका भगवान्के शरीरपर लेपकर उन लोक-भूषण जिनको सुन्दर वस्त्र और बहुमुल्य आभूषणोंसे सिंगारा, उन्हें फूलोंकी मनोहर माला पहराई। इस प्रकार सिंगारे हुए लोक-श्रेष्ठ भगवान् ऐसे जान पड़े—मानों मुक्तिकान्ताके वर बनकर वे जा रहे हैं। इसी समय देवतोंने भगवान्के सामने 'देव-कुरु' नाम रत्नमयी पालकी लाकर रक्खी। संयम ग्रहण-की इच्छा कर भगवान् उसमें बैठे। देवगण उस पालखी-को उठाकर चले। भगवान्के आगे आगे अनेक प्रकारके बाजे बज रहे थे। छत्र उनपर शोभित था। चँवर ढुर रहे थे। अनेक राजे-महाराजे तथा विद्याधर लोग भगवान्के साथमें चल रहे थे। देवगण त्रिभुवननाथ जिनको घने छायादार वृक्षोंसे शोभित 'सहस्राम्रवन' नाम बागमें ले-गये। सुन्दर वचनोंसे सब लोगोंको खुश करनेवाले भगवान् वहाँ एक सुन्दर सजाई गई पवित्र शिलापर पद्मासन विराजे। छठे उपवासके दिन चैत सुदी छठको चित्रानक्षत्रमें सन्ध्या समय अन्य एक हजार राजोंके साथ मन-वचन-कायसे सब परिग्रह छोड़कर और 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर नेमिजिनने जिनदीक्षा ग्रहण करली। अपने हाथोंसे भगवान-ने केशोंका लोच किया। कोई तीनसौ वर्षतक कुमार अव-स्थामें रहकर भगवान्ने यह संयम स्वीकार किया था। आत्म-ध्यान करते हुए नेमिजिनको उसी समय मनःपर्ययज्ञान हो गया। इसके बाद भगवान्के पवित्र केशोंकी सुरेन्द्रने

पूजा कर उन्हें रत्नके पिटारेमें रक्खा और धर्म-प्रेमके वश होकर उत्सव करते हुए अन्य देवगणसहित उन्हें लेजाकर क्षीरसमुद्रमें डाल दिया।

देवाङ्गनासी सुन्दरी राजकुमारी राजीमतीने जब यह सब सुना तब उसे, भूखेका अमृतमय भोजन छुड़ालेनेके सदृश बड़ा ही दारुण दुःख हुआ। उसने बड़ा ही शोक किया। उसके कोमल मनको इस घटनासे अत्यन्त ताप पहुँचा। कुछ समय बाद जब विवेकरूपी माणिकके प्रकाशसे उसके हृदयका मोहान्धकार नष्ट होगया तब वह भी जिनप्रणीत श्रेष्ठ धर्मका मर्म समझकर विषय-भोगोंसे बड़ी ही विरक्त होगई। महा वैरागिन बनकर उसने जिनको नमस्कार किया और उसी समय सब बहुमूल्य रत्नाभरणोंको त्याग-कर रत्नत्रयमयी पवित्र जिनदीक्षा ग्रहण करली। कुलीन कन्याओंका यह करना उचित ही है जो वे वाग्दान ही हो जानेपर अन्य पतिको न वरें।

इधर जहाँ रत्नत्रय-पवित्र श्रीनेमिजिन आत्मध्यान करते हुए मेरु-सदृश निश्चल विराज रहे थे, देवगण वहाँ बलदेव, कृष्ण वगैरहको साथ लेकर आये। अनेक द्रव्योंसे उन्होंने भगवान्‌की पूजाकर बड़े आनन्दसे फिर स्तुति की। हे देव, आप त्रिभुवनके स्वामी हैं। आपने मोह-रूपी महान् ग्राहको जीत लिया है। प्रभो, आप ही सब तत्वोंके जाननेवाले और त्रिलोक-पूज्य हो। आपने उद्धत काम-शत्रुको

जीत करके स्त्री-सम्बंधि सुखकी ओरसे मुँह फेरकर बड़ी वीरताका काम किया। हे मुनि-श्रेष्ठ नेमिजिन, इस कारण आपको नमस्कार है। इसके बाद उन परम आनन्द देनेवाले मुनिजन-सेवित नेमिजिनको नमस्कार कर और उनके गुणोंका स्मरण करते हुए वे सब अपने अपने स्थानको चले गये।

मुनिजनोंके साथ ध्यानमें बैठे हुए नेमिजिन ऐसे जान पड़ते थे—मानों पर्वतोंसे घिरा हुआ अंजनगिरि है। सुरासुर-पूज्य नेमिजिन इस प्रकार शुभ ध्यानमें दो दिन बिताकर तीसरे दिन ईर्यासमिति करते हुए पारणा करनेको द्वारिकामें गये। उन्हें देखकर पुण्यशाली दाता जनोंको बड़ा ही आनन्द होता था। हजारों दानी उन्हें आहार देनेके लिए बड़ी सावधानीके साथ अपने अपने घरपर खड़े हुए थे। एक वरदत्त नाम राजाने, जिसका शरीर सोनेकासा सुन्दर चमक रहा था, भगवानको आते हुए देखे। उसे जान पड़ा—मानों नीलगिरि पर्वत ही चला आ रहा है या निःसङ्ग—धूल वगैरह रहित वायु पृथ्वीमण्डलको पवित्र कर रहा है अथवा शीतल चन्द्रमाका बिम्ब आकाशसे पृथ्वीपर आया है। देखते ही भगवान्के सामने आकर उसने उनकी तीन प्रदक्षिणा कीं। मानों उसके घरमें निधि ही आ गई हो, यह समझकर वह बड़ा ही आनन्दित हुआ। इसके बाद उन त्रिलोक-बन्धु जिनको अपने महलमें ले-जाकर उसने बड़ी भक्तिसे ऊँचे आसन पर बैठाया। फिर जलभरी सोनेकी झारीसे उनके

सुखकर्त्ता पाँव पखारकर उसने चन्दनादिसे उनकी पूजा की और मन-वचन-कायकी पवित्रतासे उन्हें प्रणाम किया । इस राजाके यहाँ वैसे तो सदा ही शुद्धताके साथ भोजन तैयार होता था, पर आज कुछ और अधिक पवित्रतासे तैयारी की गई थी । उसने तब महापात्र नेमिजिनको नवधा भक्ति और श्रद्धा, शक्ति, भक्ति, दया, क्षमा, निर्लोभता—आदि दाताके गुण-सहित प्रासुक आहार, जो दाताको अनन्त सुखका देनेवाला है, कराया । भगवान्ने उस पवित्र और पथ्यरूप आहारको अच्छी तरह देखकर उदासीनताके साथ कर लिया । इतनेमें ऊपरसे देवगणने—" यह अक्षय दान है, " यह कहकर बड़े प्रेमके साथ राजाके आँगनमें कोई साढ़े १२ करोड़ दिव्य-प्रकाशमयी पँचरंगी रत्नोंकी वरसा की, सुगन्धित फूल बरसाये, शीतल और सुगंधित हवा चलाई, धीरे धीरे गंध-जलकी वरसा की और नगाड़े बजाये । इससे लोग बड़े सन्तुष्ट हुए । देवगणने कहा—साधु साधु राजन्, तुम बड़े ही पुण्यवान् हो जो भव्यजनको संसार-समुद्रसे पार करनेको जहाज सदृश जगच्चूड़ामणि नेमिजिन योगी तुम्हारे घर आहार करने आये । वरदत्त महाराज, तुमसे महा दानीको धन्य है, जो तुम्हारे महलको जगद्गुरुने पवित्र किया । तुम्हारा यह दान बड़ा ही शुद्ध और सब सुख-सम्पदा तथा पुण्यका कारण है । इसका वर्णन कौन कर सकता है ? उन पवित्र-हृदय देवोंने इस प्रकार भक्तिसे वरदत्तकी बड़ी प्रशंसा की । इस महा-

दानके फलसे वरदत्तराजके घर पञ्चाश्चर्य हुए। उनका यश चारों ओर फैल गया। श्रेष्ठ पात्रके समागमसे क्या शुभ नहीं होता? इस पात्रदानके उत्तम पुण्यसे दुर्गतिका नाश होता है, उज्ज्वल यश बढ़ता है, और धन-दौलत, राज्य-विभव, रूप-सुन्दरता, दीर्घायु, निरोगता, श्रेष्ठ-कुल, स्त्री-पुत्र आदि इस लोकका सुख तथा परम्परा मोक्ष भी प्राप्त होता है। इसी कारण सत्पुरुष वरदत्त राजाकी तरह हितकारी पात्र-दान करते है। उनकी देखा-देखी अन्य भव्यजनको भी अपनी शक्तिके अनुसार धर्मसिद्धिके लिए निरन्तर भक्ति-सहित पात्रदान करते रहना चाहिए।

त्रिभुवनके उद्धारकर्त्ता श्रीनेमिप्रभु आहार कर अपने स्थान चले गये। वहाँ वे पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति, पाँच समिति, रत्नत्रय और दस धर्मका दृढ़तासे पालन करते थे। पवित्रात्मा नेमिप्रभुने राग-द्वेषोंको जीत लिया, आत्मबलसे केसरी समान बनकर काम-हाथीको चूर दिया। इस प्रकार धीरवीर नेमिजिन बड़े शोभित हुए। भगवान् नेमिजिन तीर्थंकर थे, इस कारण उनकी दृढ़-भावनासे छह आवश्यक कर्म अत्यन्त उत्तमतासे पले। परिग्रहरूपी ग्रहसे मुक्त, सुरासुर-पूज्य और दया-लतासे वेष्टित नेमिप्रभु चलते फिरते कल्पवृक्षसे जान पड़ते थे। वे मनमें निरन्तर बारह भावनाओं और जीव, अजीव आदि सप्त तत्त्वोंका विचार-मनन किया करते थे। त्रिलोककी स्थितिका उन्हें ज्ञान था। वे क्रोध, मान,

माया, लोभादिसे रहित, वीतराग, अनन्त गुणोंके धारक थे और बड़े सुन्दर थे। उन्होंने आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञारूप आगकी धधकती हुई महान् दुःख देनेवाली ज्वालाको सन्तोष-जलसे बुझा दिया था। भूख-प्यास आदिके परीषहरूपी वीर योद्धा भी नेमिप्रभुको न जीत सके, किन्तु उलटा भगवान्ने ही उन्हें जीत लिया था। सैकड़ों प्रचण्ड हवा चलें, वे छोटे छोटे पर्वतोंको हिला सकती है, पर सुमेरु पर्वतको कभी हिला नहीं सकतीं। नेमिजिन भी वैसे ही स्थिर थे तब उन्हें किसकी ताकत जो चला सकता था। त्रिकाल-योगी और शुभ-लेश्या युक्त जगद्बन्धु नेमिजिन इस प्रकार इच्छा-निरोध-लक्षण तप करते हुए सुराष्ट्र देशके तिलक गिरनार पर्वतपर आये। उसपर निर्मल पानी भरा हुआ था। नाना तरहके वृक्ष फल-फूल रहे थे। मुक्ति स्थानके समान उसपर जाकर भव्यजन बड़ा सुख लाभ करते थे। उनका सब दुःख-सन्ताप नष्ट हो जाता था। वह सत्पुरुषके सदृश लोगोंको आनन्दित करता था। देवतागण आकर उसकी पूजा करते थे। इसका दूसरा नाम 'ऊर्जयन्तगिरि' है। भगवान्ने वरसायोग उसीपर विताया था। वरसाके कारण उसकी शोभा डरावनीसी होगई थी। पानी वरसनेके कारण वह सब ओर जलमय ही जलमय हो रहा था। मेघोंके गरजने और विजलियोंकी कड़कड़ाहटसे सारा पर्वत शब्दमय हो गया था—कुछ सुनाई न पड़ता था।

प्रचण्ड हवाके झकोरोंसे टूटकर गिरे हुए शिखरोंसे वह व्याप्त हो रहा था। रातके समय वह बड़ा ही भयानक देख पड़ता था। जंगली जानवरोंकी विकराल ध्वनि सुनकर डरपोंक लोगोंकी उसपर चढ़नेकी हिम्मत न होती थी। चारों ओर पत्थरोंके ढेरके ढेर पड़े हुए थे। आकाश, मेघ और अन्धकारसे छाया हुआ ही रहता था।

बरसायोग भर भगवान् इसी पर्वतपर रहे। पानी बरसा करता था और भगवान् मेरुकी तरह स्थिर रहकर ध्यान किया करते थे। उस समय नेमिप्रभु जिसपर जल गिर रहा है ऐसे इन्द्रनीलगिरिके ऊँचे शिखर-समान देख पड़ते थे। भगवान्के शरीरकी दिव्य प्रभासे सारा पर्वत प्रकाशमय हो रहा था। इस प्रकार सुरासुर-पूज्य, निर्भय, निस्पृह, ज्ञानी, मौनी, निराकुल, निस्संग, आत्म-भावना-प्रिय और जगद्गुरु नेमिप्रभुने शुभध्यानके घर इस बड़े ऊँचे गिरनार पर्वतपर सुखके साथ बरसाकाल पूरा किया। भगवान् जो ध्यान करते रहे उस ध्यानका क्या लक्षण है, कितने भेद हैं, कौन स्वामी–ध्याता है और क्या फल है, इन सब बातोंका आगमके अनुसार संक्षेप वर्णन यहाँ भी किया जाता है। एकाग्र-चिन्तनरूप उत्कृष्ट ध्यान वज्रवृषभनाराचसंहननवालेके एक अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त होता है। ध्यानके–आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान ऐसे चार भेद हैं।

प्रिय वस्तुकी चाह, अप्रिय वस्तुका विनाश, रोगादिककी वेदनाके दूर करनेवाला यत्न और निदान— आगामी विषय भोगोंकी चाह इन बातोंका चिन्तन किया करना, ये आर्त्तध्यानके चार भेद हैं। ये धर्मके नाश करनेवाले और पशु वगैरह गतिके कारण हैं। अव्रती, अणुव्रती और प्रमत्त गुणस्थानवाले मुनियोंके यह आर्त्तध्यान होता है।

आर्त्तध्यान।

हिंसामें आनन्द मानना, झूठमें आनन्द मानना, चोरीमें आनन्द मानना और विषयोंके रक्षणमें आनन्द मानना—ये चार रौद्रध्यानके भेद हैं। ये नरकादिकोंके महान् दुःख देनेवाले हैं। यह ध्यान चौथे और पाँचवे गुणस्थानवालेके होता है।

रौद्रध्यान।

आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय ये चार धर्मध्यानके भेद हैं। इस ध्यानसे स्वर्गादिक शुभगति प्राप्त होती है। यह पूर्वज्ञान धारीके होता है।

धर्मध्यान।

पृथक्त्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्क-अविचार, सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्त्ति—ये चार शुक्लध्यानके भेद हैं। इनमें आदिके सुखके कारण दो ध्यान तो पूर्व ज्ञानीके होते हैं और अन्तके दो ध्यान केवली भगवान्के होते हैं। ये मोक्ष सुखके कारण हैं।

शुक्लध्यान।

इनमें आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान ये दोनों दुर्गतिके कारण हैं। इस कारण तत्वज्ञानी प्रभु नेमिजिन इन दोनों ध्यानोंको छोड़कर धर्मध्यानका चिंतन करने लगे। इस प्रकार तप करते हुए सुरासुर-पूज्य भगवान् कोई छप्पन दिन तक छद्म-स्थ अवस्थामें रहे। इसके वाद उन्होंने कर्म प्रकृतियोंका क्षय आरंभ किया। आगेके अध्यायमें उसका कुछ वर्णन किया जाता है।

काम-शत्रुका नाश करनेमें जिनने बड़ी वीरता दिखलाई और जो भव्यजनोंको संसार समुद्रसे पार उतारनेमें जहाज समान हुए वे देवेन्द्र-नरेन्द्र-विद्याधर-पूज्य, चारित्र-चूड़ा-मणि और त्रिजगद्गुरु नेमिजिन संसारमें जय लाभ करें—उनका पवित्र शासन दिनों दिन बढ़े।

इति नवमः सर्गः।

दसवाँ अध्याय ।

नेमिजिनको केवल-लाभ और समवशरण-निर्माण ।

गिरनार पर्वतपर बाँसके नीचे ध्यान करते हुए शुद्धात्मा और परमार्थज्ञानी महामुनि नेमिजिनने कँवार सुदी एकमको चित्रानक्षत्रमें, छह उपवास पूरे कर प्रातःकाल कर्मोंकी प्रकृतियोंका क्षय करना आरंभ किया। उसका क्रम जिनागमके अनुसार संक्षेपमें यहाँ लिखा जाता है।

सम्यग्दृष्टि, देश-संयत, प्रमत्त अथवा अप्रमत्त इन चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एकमें स्थित रहकर धर्मध्यान द्वारा वीर-शिरोमणि नेमिजिन मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, और सम्यङ्मिथ्यात्व इन तीन मिथ्यात्व-प्रकृतियों, और अनन्तानुबन्धि-क्रोध-मान-माया-लोभ इन चार कषायों तथा नरकायु, तिर्यगायु और देवायु इस प्रकार सब मिलकर दस प्रकृतियों—को क्षयकर आठवें गुणस्थानमें क्षपकश्रेणी चढ़े। इस अपूर्वकरण नाम आठवें गुणस्थानमें जीवके परिणाम क्षण क्षणमें अपूर्व अपूर्व होते हैं—जैसे पहले कभी नहीं हुए, इस कारण इसमें तत्वज्ञानी नेमिजिन 'अभूतपूर्वक' कहलाये। इसके बाद अनिवृत्तिकरण नाम नवमें गुणस्थानमें नेमिजिनने 'प्रथक्त्ववितर्कवीचार' नाम पहले शुक्लध्यान द्वारा अर्थ-संक्रान्ति और व्यंजन-संक्रातिरूप—पर्यायोंके भेदोंका

ध्यान करते हुए और आत्म-चिन्तन करते हुए इस गुण स्थानके नौ भागोंमें छत्तीस प्रकृतियोंका क्षय किया। उनमें पहले भागमें साधारण, आतप, एकेन्द्रिय-दो इन्द्रिय-तीन इन्द्रिय-चार इन्द्रिय-जाति, स्थानगृद्धि, प्रचलाप्रचला, निद्रा-निद्रा, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म और उद्योत इन सोलह प्रकृतियोंका, दूसरे भागमें चार अप्रत्याख्यानावरणी-क्रोध-मान-माया-लोभ और चार प्रत्याख्यानावरणी--क्रोध-मान-माया-लोभ इन नाना दुःखोंकी देनेवाली आठ प्रकृतियोंका, तीसरे भागमें नपुंसक-वेदका, चौथेमें स्त्री-वेदका, पाँचवेमें हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन छह प्रकृतियोंका, छठे भागमें पुरुष-वेदका और इसके बाद क्रमसे संज्वलन-क्रोध-मान-माया इन तीन प्रकृतियोंका क्षयकर कर्म-शत्रुका मर्म जाननेवाले नेमिजिन नवमें गुणस्थानसे दसवें गुणस्थानमें आये। इस सूक्ष्मसाम्पराय नाम दसवें गुणस्थानमें नेमि-प्रभुने संज्वलन सम्बन्धि सूक्ष्म-लोभका नाश किया। इस प्रकार मोहनीयकर्मरूप प्रचण्ड वैरीको जीतकर शूर-वीर नेमिजिन एक बलवान् सेनापतिपर विजय-लाभ किये हुए-की तरह महान् बली होगये। इसके बाद गुणोंकी खान निर्मोही नेमिप्रभु दूसरे एकत्ववितर्क-अवीचार नाम शुक्लध्यान द्वारा क्षीणकषाय नाम बारहवें गुणस्थानमें जाकर उसके उपान्त्य समयमें-अन्तिम समयके एक समय पहले निद्रा और प्रचलाका नाश

कर स्वयं मेरु सदृश स्थिर रहे। इसके बाद अन्तसमयमें उन्होंने चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन इन संसारकी बढ़ानेवाली चार दर्शन-प्रकृतियोंका, और आँखोंपर पड़े हुए वस्त्रकी तरह मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण, और केवलज्ञानावरण इन पाँच आवरण-प्रकृतियोंका तथा दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय इन पाँच दुस्सह अन्तराय-प्रकृतियोंका क्षय किया।

इस प्रकार नेमिजिनने घातिया कर्मोंकी त्रेसठ प्रकृतियोंका क्षयकर श्रेष्ठ, परम आनन्दरूप और लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया। अब वे सयोगकेवली नाम तेरहवें गुणस्थानमें आगये। भगवान् अब निर्मल पूर्ण चन्द्रमाकी तरह आकाशमें स्थित हुए। उनके प्रभावसे संसार सोतेसे जग उठा। दिशायें निर्मल होगईं। जयजयकारकी विराट ध्वनिसे जगत् पूर्ण होगया। पृथ्वीपर आनन्द ही आनन्द छा-गया। देवोंके आसन हिल गये—जान पड़ा वे भगवान्‌के ज्ञानकल्याणोत्सवकी सूचना दे रहे हैं। सब स्वर्गोंमें घंटानादकी ध्वनि गर्ज उठी। उसे सुनकर देवतोंके मन बड़े प्रसन्न हुए। ज्योतिर्लोकमें सब दिशाओंको शब्दमय करनेवाला सिंहनाद हुआ। व्यन्तरोंके भवनोंमें नगाड़े बजे। भवनवासी देवोंके यहाँ शंखनाद हुआ—जान पड़ा वह जिनदेवके केवलकल्याणकी सूचना दे रहा है। सब देवगणके भवनोंके कल्पवृक्ष अपने आप फूलोंकी

बरसा करने लगे—मानों जिन पूजनमें वे फूल चढ़ा रहे हैं। इस प्रकार अपने अपने भवनोंमें प्रगट चिह्नों द्वारा नेमि जिनको केवलज्ञान हुआ जानकर 'देव' 'जय' 'नन्द' 'पालय' कहते हुए देवगणने बड़े आनन्द और भक्तिके साथ उन परम पावन नेमिप्रभुको नमस्कार किया।

इसके बाद सौधर्मेन्द्रने कुबेरको भगवान्‌के लिए एक सुन्दर समवशरण बनानेकी आज्ञा दी। इन्द्रकी आज्ञा पाकर भक्ति-निर्भर कुबेरने लोगोंके मनको मोहित करनेवाला बड़ा ही सुन्दर सवमशरण बनाया। कुबेरने उस समवशरणमें जो शोभा की उसका वर्णन कौन कर सकता है। तौ भी—बुद्धिके रहने पर भी भव्यजनके आनन्दार्थ उस नेमिप्रभुकी सभाकी शोभाका कुछ थोड़ेसेमें वर्णन करना उचित्त जान पड़ता है।

पहले ही एक बड़ी भारी, निर्मल इन्द्रनीलमणिकी पृथ्वी बनाई गई। उसे देखकर देवतोंके मन और नेत्र बड़े आनन्दित होते थे। वह पृथ्वी पाँच हजार धनुष ऊँची थी। उसकी २० हजार सीढ़ियाँ थीं। प्रभुकी वह लोकश्रेष्ठ चमकती हुई शुद्ध भूमि जगत्‌की लक्ष्मी-देवीके देखनेके काच-सदृश शोभित हुई। उसके चारों ओर पँचरंगी रत्नोंकी धूलका एक 'धूलिशाल' नाम मनोहर कोट बनाया गया। बड़ा ऊँचा, लोगोंको आनन्द देनेवाला वह चमकता हुआ कोट लक्ष्मीके कुण्डल-सदृश जान पड़ता था। उस भूमिकी चारों दिशाओंमें सोनेके बड़े बड़े स्तंभ गाड़े गये और उनपर

रत्नों और मोतियोंके बने तोरण लटकाये गये। उनके बाद चारों दिशाओंके बीचमें चार बड़े ऊँचे सोनेके सुन्दर मान-स्तंभ बनाये गये। वे मानस्तंभ चार चार फाटकवाले तीन कोटोंसे घिरे हुए थे। वे त्रिमेखलावाले चबूतरोंपर स्थित थे। उन चबूतरोंकी सोलह सोलह सीढ़ियाँ थीं और वे सब सोनेकी बनी थीं। छत्र, चँवर, धुजा आदिसे शोभित वे पवित्र मानस्तंभ छत्र-चँवर-धुजा-युक्त राजेसदृश जान पड़ते थे। उन्हें देखकर मिथ्यादृष्टियोंका मान स्तंभित हो जाता था—नष्ट हो जाता था। इस कारण इनका 'मानस्तंभ' नाम सार्थक था। उनके बीच भागमें सोनेकी प्रतिमायें बनी हुई थीं। इन्द्रादिक उनकी पूजा करते थे। इन्द्रने उन्हें बनाया तथा धुजा आदिसे शोभित किया इस कारण उनका दूसरा नाम 'इन्द्रध्वज' भी है। उन मानस्तंभोंके आगे देव, विद्याधर, राजे-महाराजे वगैरह सदा बड़ी भक्तिसे गाते, बजाते और नृत्य करते थे। उन चारों मानस्तंभोंकी चारों दिशाओंमें निर्मल जलकी भरी सुन्दर चार चार बावड़ियाँ थीं। उनमें सब प्रकारके कमल खिल रहे थे, लहरें लहरा रही थीं—जान पड़ता था कि प्रभुके लिए श्राविकाओंने हाथोंमें अर्घ ले रक्खा है। उनके किनारे स्फटिकके और सीढ़ियाँ मणियोंकी थीं। लोग उन्हें देखकर अत्यन्त मुग्ध हो जाते थे। उनमें हंस वगैरह पक्षिगण सुमधुर शब्द कर रहे थे—जान पड़ता था वे बावड़ियाँ नेमिप्रभुके चन्द्र-सदृश निर्मल गुणोंका

बखान कर रही हैं। पूर्व-दिशामें जो मानस्तंभ था उसकी बावड़ियोंके नाम नन्दा, नन्दोत्तरा, नन्दवती और नन्दघोषा थे। दक्षिण-दिशाकी बावड़ियोंके नाम विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता थे। पश्चिम-दिशाकी बावड़ियोंके नाम अशोका, सुप्रतिबुद्धा, कुमुदा और पुण्डरीका- थे। उत्तर-दिशाकी बावड़ियोंके नाम हृदयानन्दा महानन्दा, सुप्रबुद्धा और प्रभंकरी थे। निर्मल जलकी भरी वे सोलहों बावड़ियाँ सुख देनेवाली सोलहकारणभावनाके सदृश जान पड़ती थीं। उन सोलहों बावड़ियोंके पास निर्मल पानीके भरे दो दो कुण्ड पाँव धोनेके लिए थे। उन स्वच्छ जलभरे हुए कुण्डोंसे वे बावड़ियाँ पुत्रवती स्त्रीके समान शोभित होती थीं। यहाँसे थोड़ी दूर जाकर- सत्पुरुषोंकी बुद्धिके समान आनन्द देनेवाला एक बड़ा चौड़ा मार्ग था। इसके बाद एक निर्मल जलकी भरी हुई खाई थी। उसके किनारे रत्नोंके बने हुए थे। वह स्वर्गङ्गासी जान पड़ती थी। वह बड़ी गहरी, स्वच्छ और शीतल थी--जान पड़ता था जैसे जिनराजकी गंभीर, स्वच्छ और शीतल वाणी है। उसमें जो हंस, चकआ-चकई आदि पक्षिगण सुन्दर कूज रहे थे- मानों उनके शब्दके बहाने वह खाई भक्तिसे भगवान्की स्तुति कर रही है। उसके आगे चलकर गोलाकार एक मनोहर फूलबाग- (पुष्पवाटिका) था। खिले हुए सुन्दर सुन्दर फूलोंसे वह व्याप्त

हो रहा था। जिनकी सुगन्धसे सब दिशायें सुगन्धित हो रहीं थीं ऐसे खिले हुए फूलोंसे सुन्दरता धारण किये हुए वह बाग प्रगट तिल आदि चिन्होंसे युक्त नेमिजिनके शरीर-सदृश शोभा दे रहा था। उसके कृत्रिम सुन्दर क्रीड़ा-पर्वत फल-फूल-वृक्षोंसे सचमुच ही पर्वतसे जान पड़ते थे। उसके लता-मण्डपोंमें देवताओंके आरामके लिए सत्पुरुषोंकी बुद्धिसमान निर्मल चन्द्रकान्तमणिकी शिलायें रक्खी हुई थीं। इस प्रकार सुन्दर वह फूलबाग हवासे हिलते हुए वृक्षोंके बहानेसे मानों सुन्दर नृत्य कर रहा था। उसमें फूलोंकी सुगन्धसे खिंचे आये भ्रमर जो सुन्दरतासे गूँज रहे थे-जान पड़ता था वह फूलबाग नेमिजिनकी स्तुति कर रहा है। यहाँसे थोड़ी दूर आगे चलकर एक बड़ा ऊँचा और लोगोंके मनको मोहित करनेवाला सोनेका कोट था। वह गोलाकार बना हुआ सोनेका कोट मानुषोत्तर पर्वत-सदृश देख पड़ता था। रत्नोंके बने हुए मनुष्य, सिंह, हाथी आदिके जोड़ोंसे वह कोट नटाचार्यकी तरह शोभित होता था। उस पर जड़े हुए रत्नोंकी कान्ति जो फैल रही थी उससे वह इन्द्र-धनुषसा दिखाई पड़ता था। उसके चारों ओर चार चाँदीके दरवाजे बने हुए थे—जान पड़ता था समवशरणरूपी लक्ष्मीके चार उज्ज्वल मुँह है। वे तीन तीन मंजिलवाले ऊँचे दरवाजे निर्मल रत्नत्रय-सदृश जान पड़ते थे। जिनके ऊँचे शिखर पद्मरागमणि—लालके बने हुए थे ऐसे वे बड़े बड़े दर-

वाजे हिमवान् पर्वतके शिखरसे शोभते थे। उन दरवाजोंमें स्वर्गकी अप्सरायें सदा नेमिप्रभुके यशके गीत गाया करती थीं। उन एक एक दरवाजोंमें झारी, कलश, दर्पण, पंखा आदि एक-सौ आठ आठ मंगलद्रव्य शोभित थे। उन दरवाजोंमें चमकते हुए रत्नोंके तोरणोंको देखकर जान पड़ता था—मानों सारे संसारकी श्रेष्ठ सम्पत्ति यहीं आगई है। उनमें काळ आदि रत्नपूर्ण निधियाँ लोगोंके मनको मोहित कर रही थीं। वे निधियाँ उन दरवाजोंमें ऐसी शोभित हुई—मानों प्रभुने जो उन्हें छोड़ दिया सो भक्तिसे वे फिर उनकी सेवा करने आई हैं। उन दरवाजोंकी दोनों बाजू दो दो नाटकशालायें थीं। वे नाटकशालायें तीन तीन मंजिलकी थीं—जान पड़ता था वे मोक्षके रत्नत्रयरूप मार्ग हैं। उन नाटकशालाओंके खंभे सोनेके, भीतें स्फटिकमणिकी और शिखर रत्नोंके थे। उनमें देवाङ्गनायें भगवान्‌के चन्द्र-समान उज्ज्वल गुणोंका बड़े आनन्दके साथ वखान कर रही थीं। उनमें किन्नरोंके गीतोंके साथ बजते हुए नाना तरहके बाजोंकी ध्वनि मेघोंकी ध्वनिको भी जीत लेती थीं। गन्धर्वदेव-गण उनमें जिन भगवान्‌के हितकारी गुणोंको गाते थे और देवाङ्गनायें नृत्य करती थीं। इन्द्रादि देवता बड़े प्रेमसे उस नाटकाभिनयके देखनेवाले थे। वहाँकी शोभाका वर्णन कौन कर सकता है?

वहाँसे आगे मार्गके दोनों बाजू दो दो सुन्दर धूपके घड़े रक्खे हुए थे। उनकी सुगन्धसे सब दिशायें सुगन्धित

हो रही थीं। उनमें जलती हुई सुगन्धित कृष्णागुरु धूपका धुँआ जो आकाशमें छा जाता था–जान पड़ता था काले मेघ छा-गये है। वह धुँआ आकाशमें जाता हुआ, पुण्य-प्रभावसे डरकर भागते हुए पापपुंजसा देख पड़ता था। उसकी सुगन्धसे खिंचकर आते हुए काले भौरोंसे वह धुँआ दुगुना दिखाई पड़ता था। वहाँसे चलकर चारों दिशाओंमें चार वन थे। उनके नाम थे–अशोकवन, सप्तच्छदवन, चम्पकवन और आम्रवन। वे वन ऐसे शोभित होते थे–मानों नेमिप्रभुकी सेवा करनेको चार नन्दनवन आये हैं। उन वनोंके वृक्ष फले-फूले, छायादार, बड़े ऊँचे और सुखशान्तिके देनेवाले थे। जान पड़ते थे जैसे राजेलोग हों। वृक्षोंपर बोलते हुए कोकिल, मोर, पपीहा, तोते आदि पक्षिगणके द्वारा मानों वे वन नेमिजिनकी स्तुति कर रहे हैं। जिनपर भौरोंके झुण्डके झुण्ड गूँज रहे हैं ऐसे गिरते हुए अपने दिव्य फूलों द्वारा मानों वे वृक्ष नित्य नेमिप्रभुकी पूजा कर रहे हों। उन वनोंमें सोने और रत्नोंके बने हुए कुए, बावड़ी और तालाब वगैरह बड़े निर्मल पानीके भरे हुए थे। उनमें खिले हुए कमलोंकी अपूर्व शोभा थी। जान पड़ता था–वे निर्मल हृदयवाले शुद्ध और लक्ष्मीयुक्त सज्जन लोग है। उन वनोंमें कहीं बड़े ऊँचे और मनोहर चार चार छह छह मंजिलवाले महल बने हुए थे। कहीं कृत्रिम सुन्दर क्रीड़ापर्वत बने हुए थे। देवतागण आकर अपनी देवाङ्गनाओंके

साथ उनमें हँसी-विनोद किया करते थे। उनमें निर्मल जल-भरी कृत्रिम नदियाँ फूले हुए कमलोंसे बड़ी सुन्दर देख पड़ती थीं—जान पड़ता था वे पुत्रवती कुलकामिनियाँ हैं। निर्मल पानीके भरे हुए तालाब उन वनोंमें जगत्‌का ताप मिटानेवाले पवित्र-हृदय सत्पुरुषसे जान पड़ते थे। उन वनोंमें लोगोंका शोक नष्ट करनेवाला ‘अशोक’ नाम वन शीतल, सुख देनेवाले और सज्जनोंके शुद्ध मन-सदृश देख पड़ता था। सात सात पत्तोंवाले वृक्ष जिसमें हैं ऐसा सुन्दर ‘सप्तच्छद’ नाम वन जिनप्रणीत सप्त तत्वोंके सदृश जान पड़ता था। ‘चम्पक’ नाम वन अपने खिले हुए फूलोंसे नेमिजिनकी प्रदीप द्वारा पूजन करता हुआ ज्ञात होता था। ‘आम्रवन’ कोकिलाओंकी मधुर ध्वनिके बहाने जिनकी स्तुति करता हुआ शोभित होता था। अशोकवनमें एक बड़ा भारी अशोकवृक्ष था। उसका चबूतरा सोनेका बना हुआ और तीन कटनीसे युक्त था। जान पड़ता था जैसे राजा हो। इस वृक्षको चारों ओरसे घेरे हुए तीन कोट थे। वह छत्र, चँवर, झारी, कलश आदि मंगल द्रव्योंसे शोभित था। वह सारा सोनेका था। उसका मूलभाग वज्रका बना हुआ और सम्यग्दृष्टिके सदृश दृढ़ था। उसके पत्ते गरुन्मणिके और फूल पद्मरागमणिके बने हुए थे। लोगोंका मन उसे देखकर बड़ा मोहित होता था। वह फूलोंकी तेज गंधसे खिंचकर आये हुए भौंरोंके गूँजनेके बहाने मानों प्रसन्न होकर जिनकी स्तुति कर रहा है। उसपर

टँगी हुई घंटाकी जो बड़े जोरकी ध्वनि होती थी—जान पड़ता था मोह शत्रुपर विजय-लाभ कर नेमिप्रभुने जो निर्मल यशलाभ किया है उसकी वह घोषणा कर रहा है। हवाके वेगसे फहराती हुई ध्वजाओंके मिससे मानों वह लोगोंके पापको दूर कर रहा है। जिनपर बड़े बड़े मोतियोंकी माला लटक रही हैं ऐसे सिरपर धारण किये हुए तीन सुन्दर छत्रोंसे वह वृक्ष राजाके सदृश जान पड़ता था। इस वृक्षके मध्यभागमें चारों दिशाओंमें पाप नाशकरनेवाली सुवर्णमयी जिनप्रतिमायें थीं। इन्द्रादि देवतागण आकर क्षीर-समुद्रके जलसे उन जन-हितकारी प्रतिमाओंका अभिषेक करते थे और गंध-पुष्पादि श्रेष्ठ वस्तुओंसे बड़े प्रेमके साथ उनकी पूजा करते थे। इसके वाद वे भक्ति-समान निर्मल, सुगन्धित फूलोंकी बड़े आनन्द और भक्तिके साथ अंजलि अर्पण कर उन पवित्र जिनप्रतिमाओंकी स्तुति करते थे। कितने देवगण उस चैत्यवृक्षके सामने अपनी अपनी देवाङ्गनाओंके साथ नृत्य करते थे। और भगवानके निर्मल गुणोंका वखान करते थे। जैसा अशोकवनमें अशोक नाम चैत्यवृक्ष है उसी तरह सप्तच्छदवनमें सप्तच्छद नाम चैत्यवृक्ष, चम्पकवनमें चम्पक नाम चैत्यवृक्ष और आम्र-वनमें आम्र नाम चैत्यवृक्ष है। उनका मध्यभाग चैत्य—प्रतिमा-धिष्ठित है, इस कारण उनका नाम चैत्यवृक्ष हुआ। वे चारों ही वृक्ष जिनप्रतिमाओंसे युक्त हैं। उनकी इन्द्रादि देवगण पूजा

करते हैं, इस कारण वे जिन-सदृश माने जाते हैं। इस प्रकार वे महिमाशाली चारों महा वन जिनभगवान्के सुख देनेवाले चार अनन्तचतुष्टयसे जान पड़ते थे। अच्छे कुलके समान फले-फूले वे चारों वन भव्यजनोंको खूब तृप्त करते थे। जिन नेमिप्रभुके वृक्षोंका इतना वैभव था तब उनकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है। उन वनोंके बाद चारों ओर सोनेकी एक वेदी बनी हुई थी। उसमें रत्नोंकी जड़ाईका काम हो रहा था। उसकी चारों दिशाओंमें चार दरवाजे थे। अपनी दिव्य कान्तिसे वह इन्द्रधनुषकी शोभाको हँस रही थी। उस आनन्दकारिणी वेदीके चारों दरवाजे चाँदीके बने हुए थे। उन दरवाजोंमें आठ आठ मंगलद्रव्य शोभित थे। रत्नोंके तोरणोंसे वे दरवाजे समवशरणलक्ष्मी-देवीके चार सुन्दर मुँहसे जान पड़ते थे। घण्टाकी ध्वनिसे वे दरवाजे मानों आनन्दित होकर भगवान्की स्तुति कर रहे थे । देव-देवाङ्गनायें उन दरवाजोंमें सदा सुन्दर गीत गाती और नाचती रहती थीं। वहाँसे चलकर रास्तेमें सोनेके खभोंपर फहराती हुई धुजायें लोगोंका मन मोहित कर रही थीं। मणिमय चबूतरेपर वे सोनेके ऊँचे और सुन्दर ध्वजस्तंभ लोकमान्य, पवित्र राजों सरीखे देख पड़ते थे। उन खंभोंका घेरा अठासी अंगुलका था और एक खंभेसे दूसरे खंभेका अन्तर पचीस धनुष-८७॥ हाथ था। कोट, वेदी, चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष, स्तूप तोरण मानस्तंभ और ध्वजस्तंभ इन सबकी ऊँचाई तीर्थंकर भगवान्की

ऊँचाईसे बारह गुणी थी। और उनका घेरा उनकी ऊँ-चाईके अनुसार जितना होना चाहिए उतना था। हाँ पर्वत वन, और घर इनका प्रमाण ज्ञानियोंने कुछ विशेषता लिये बतलाया है। पर्वतोंका घेरा ऊँचाईसे कोई आठ गुणा अ-धिक था। स्तूपोंका घेरा उनकी ऊँचाईसे कुछ अधिक था। और वेदीकी घेरा ऊँचाईका चौथा हिस्सा पुराणके ज्ञाता लो-गोंने कहा है। वे सोनेके खंभोंपर लगी हुई धुजायें-माला, वस्त्र, मोर, कमल, हंस गरुड़, सिंह, बैल, हाथी और चक्र इन दस प्रकारके चिन्होंसे युक्त थीं-इन चिन्होंसे वे धुजायें दस प्रकारकी थीं। वे दसों प्रकारकी धुजायें एक एक दि-शामें एक एक सौ आठ आठ थीं। इन हिसाबसे एक दिशामें सब धुजायें मिलाकर एक हजार ५० हुईं और चारों दिशा ओंकी मिलाकर ४ हजार ३२० हुईं। इतनी सब धुजायें हवासे फड़कती हुई ऐसी देख पड़ती थीं-मानों वे देवतोंको नेमि-प्रभुके केवलज्ञानकी पूजाके लिए बुला रही है। यहाँसे कुछ भीतर चलकर बड़ा भारी चाँदीका दूसरा कोट बना हुआ था-जान पड़ता था वह प्रभुके उज्वल यशका समूह है। यहाँ भी पहलेके समान दरवाजे वगैरहकी रचना लोगोंके नेत्रोंको आनन्दित कर रही थी। इस कोटके भी चार दरवाजे थे। उनपर वहुमूल्य और बड़े रत्न-तोरण टँगे हुए थे। प्रत्येक दरवाजोंमें रत्नादि श्रेष्ठ सम्पदासे युक्त नौ निधियाँ भव्यजनोंके मनोरथ समान शोभा दे रही थीं। प्रत्येक दरवाजेके दोनों बाजू दो दो नाटक

शालायें थीं । रास्तेमें धूपके दो-दो घड़े रक्खे हुए थे। यहाँसे कुछ दूर जाकर कल्पवृक्षोंका वन था—जान पड़ता था इस वनके वहाने भोगभूमि ही नेमिजिनकी सेवा करनेको आई है इस वनमें ऊँचे, छायादार, फले-फूले दस प्रकारके कल्पवृक्ष सुख देनेवाले श्रेष्ठ दस धर्मसे जान पड़ते थे । जिस वनमें मनचाहे फल, आभूषण, वस्त्र, पुष्पमाला वगैरह हर समय मिल सकते थे, उसका क्या वर्णन करना । जहाँ स्वर्गके देवतागण अपनी देवाङ्गना-सहित आकर बड़े सन्तुष्ट होते थे, वहाँका और अधिक क्या वर्णन किया जा सकता है। उन कल्पवृक्षोंके तेजसे नष्ट हुआ अन्धकार जिनभगवान्‌के प्रभावसे नष्ट हुए मिथ्यात्वकी तरह फिर कहीं न देख पड़ा। इस वनमें चारों दिशाओंमें चार सिद्धार्थवृक्ष थे। उनके मध्यभागमें सिद्ध-प्रतिमायें थीं। पहले चैत्यवृक्षोंकी कोट, दरवाजे, छत्र, चँवर, ध्वजा आदि द्वारा जो शोभा वर्णन की गई है वैसी शोभा यहाँ भी थी। इस वनमें यह विशेषता थी कि इसके सब वृक्ष कल्पवृक्ष थे और इस कारण वे मनचाही वस्तुके देनेवाले थे। इस वनमें कहीं क्रीड़ा-पर्वत, कहीं बावड़ी, कहीं नदी, कहीं तालाब और कहीं सुन्दर लता-मण्डप थे। उनमें देव, विद्याधर राजे लोग अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ खूब हँसी-विनोद किया करते थे। इस वनके चारों ओर सोनेकी वेदी बनी हुई थी। उसके चार सुदृढ़ दरवाजे मुनियोंकी दृढ़ क्रियाके समान शोभते थे। उन दरवाजोंपर रत्नोंके तोरण टँगे हुए

थे। और जगह जगह मंगल-द्रव्य शोभा दे रहे थे। यहाँसे थोड़ी दूर जाकर चार चार छह छह मंजिलोंकी ऊँची गृह-श्रेणियाँ थीं। उनमें कितने घर दो मंजिलके, कितने चार चार मंजिलके थे। उनकी भीतें चन्द्रकान्तमणिकी बनी हुई थीं। उनमें नाना प्रकारके रत्नोंकी पच्चीकारीका काम-हो रहा था। वे घर चित्रशाला, सभा-भवन और नाटकशालासे बड़ी सुन्दरता धारण किये हुए थे। दिव्य-सेज, आसन, सुन्दर सीढ़ियाँ वगैरहसे उन्होंने स्वर्गके भवनोंको भी जीत लिया था। उनमें इन्द्र, किन्नर, पन्नग, विद्याधर, राजे-महाराजे और अन्य देवाङ्गनागण बड़े आनन्दके साथ क्रीड़ा करते थे—सुख भोगते थे। कितने गन्धर्वगण भगवानूका उज्ज्वल यश गाते थे और कितने नाना तरहके बाजे बजाते थे। कितने नृत्य करते थे। कितने नेमिप्रभुके चन्द्र-सदृश निर्मल गुणोंका बखान करते थे और कितने सुनते थे। यहाँसे आगे रास्तेमें चारों कोनोंमें पद्मरागमणिके बने हुए नौ नौ स्तूप—छोटे-पर्वत नौ पदार्थोंके समान देख पड़ते थे। उसमें जिनप्रति-मायें और छत्र, चँवर ध्वजा आदि मंगल द्रव्य शोभित थे। उन स्तूपोंके बीचमें रत्नोंके तोरण लोगोंके नेत्रोंको मोहित कर रहे थे। उन पाप नाश करनेवाली जिनप्रतिमाओंकी जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल आदि श्रेष्ठ द्रव्योंसे इन्द्रादि देवता आकर पूजा करते थे और स्तुति करते थे। देवाङ्गनायें उन जिनप्रतिमाओंके सामने सदा

सुन्दर संगीत किया करती थीं। किन्नर और गन्धर्व वहाँ बड़ी भक्तिसे जिनभगवान्‌का यश गाया करते थे। उन उत्सव-पूर्ण स्तूपोंको लाँघकर थोड़ी दूर आगे बड़ा भारी स्फटिकका कोट बना हुआ था। वह ऊँचा कोट अपनी निर्मल प्रभासे जिनभगवान्‌का यशःपुंजसा देख पड़ता था। पद्मरागमणिके बने हुए चार दरवाजोंसे वह कोट अनन्तचतुष्टयसे शोभित शुक्लध्यानके प्रभावकी तरह जान पड़ता था। उन दरवाजोंमें भी छत्र, चँवर, धुजा आदि सुन्दर मंगल-द्रव्य थे। पहले दरवाजोंकी तरह यहाँ भी नौ निधियाँ श्रेष्ठ रत्नादि द्रव्योंसे युक्त थीं। जान पड़ता था नेमिजिनने जो लक्ष्मी छोड़दी है, इस कारण वह अब निधिका रूप लेकर जिनकी सेवा करनेको दरवाजेपर खड़ी हुई है। इन तीनों कोटोंके दरवाजोंपर क्रमसे व्यन्तरदेव, भवनवासीदेव और स्वर्गके देव हाथोंमें तलवार लिये पहरा दे रहे थे। इस अन्तके कोटसे लेकर जिन-भगवान्‌के सिंहासनतक स्फटिककी बनी हुई सोलह भीतें थीं। वे निर्मल सोलह भीतें जगत्‌का हित करनेवाली पुण्यरूप सोलह-कारणभावनाके सदृश जान पड़ती थीं। इन भीतोंके ऊपर जिसके खंभे रत्नोंके बने हुए है ऐसा बड़ा ऊँचा दिव्य स्फटिकका मंडप बना हुआ था। त्रिजगत्प्रभु, केवलज्ञान-सूरज श्रीनेमिजिन इसी मण्डपमें विराजे हुए थे और इस कारण वह मण्डप सचमुच ही श्री-मण्डप था। देवतागण भक्तिसे निरंतर उसपर सुगन्धित फूलोंकी बरसा किया करते थे। उन

फूलोंकी सुगन्धसे खिंचे आये हुए भौरोंके झुण्डके झुण्ड वहाँ सदा गूँजा करते थे—जान पड़ता था, वे जिनप्रभुकी स्तुति कर रहे हैं। वह मण्डप चाहे कितना ही बडा हो, पर त्रिभुवनके सब जन बिना किसी बाधाके उसमें समा सकते थे। जिनभगवान्‌की महिमा ही ऐसी है। उस मण्डपके प्रभा-समुद्रमें डूबे हुए देवता, विद्याधर, राजे-महाराजे ऐसे जान पड़ते थे—मानों वे नहा रहे हैं। उस मण्डपके खंभे रत्नोंके थे, स्फटिककी उसकी भीतें थीं उनमें रत्नोंकी जड़ाईका सुन्दर काम हो रहा था। उसके दरवाजेपर पहरा देनेवाले देवगण थे और त्रिजगत्‌के स्वामी सुरासुरपूज्य श्रीनेमिजिन उसमें विराज थे। उस मण्डपका कौन वर्णन कर सकता है? उस मण्डपमें ठीक बीचमें बैडूर्यमणिकी बनी हुई प्रभुकी पहली पीठ—वेदी थी। उसकी हरी हरी सुन्दर किरणें चारों ओर फैल रही थीं। यहींसे चारों दिशाओंकी बारहों सभाओंमें प्रवेश करनेके सोलह मार्ग थे। उन सबमें सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। उस प्रथम पीठपर झारी, छत्र, कलश आदि मंगल-द्रव्य त्रिभुवनकी श्रेष्ठ सम्पदाके सदृश शोभा दे रहे थे। यहीं यक्षोंके सिररूपी पर्वतपर रक्खे हुए हजार हजार आरेवाले धर्मचक्र अपने तेजसे सूर्य-समान जान पड़ते थे। इस पीठपर दूसरी पीठ थी। मेरुके शिखर-समान ऊँची वह पीठ सोनेकी बनी हुई थी। इस पीठकी आठ दिशाओंमें आठ ध्वजायें सिद्धोंके त्रिलोक-पूज्य आठ गुणोंके सदृश

शोभ रही थीं। उन धुजाओंपर क्रमसे चक्र, हाथी, बैल, कमल, वस्त्र, सिंह, गरुड़ और पुष्पमाला-ये आठ चिन्ह थे। हवासे फड़कती हुई वे धुजायें मानों अपनेपर जो लोगोंके सम्बन्धसे पापरज चढ़ गई है उसे जिन भगवानके सत्समागमसे दूर उड़ा रही हैं।

इस दूसरी पीठपर तीसरी पीठ बड़ी ऊँची और पॅच-रंगी रत्नोंकी बनी हुई थी। अपनी प्रभासे उसने सूर्यको भी जीत लिया था। इस प्रकार रत्न और सोनेकी बनी हुई उन तीनों पीठोंकी इन्द्रादिक देवगण पूजा किया करते थे, इस कारण वे जिनके सदृश मानी जाती थीं। उस तीसरी पीठकी पवित्र पृथ्वीपर एक दिव्य गंधकुटी बनी हुई थी। उसके चारों ओर ऊँचा कोट था। वह चार दरवाजेवाली गन्धकुटी रत्नमालादिसे एक दूसरी देवताके समान जान पड़ती थी। उसके रंग-विरंगे रत्नोंकी किरणें जो आकाशमें फैल रही थीं, उससे एक अपूर्व ही इन्द्रधनुषकी शोभा होकर वह लोगोंके मनको मोहित कर रही थी। रत्नोंके शिखरोंसे सुन्दर, गन्धकुटी हवासे फहराती हुई धुजाओंसे मानों स्वर्गके देवोंको बुला रही है। अच्छे उत्तम और सुगन्धित केसर, कपूर, अगुरु, चन्दन आदि द्रव्योंसे जो उसकी पूजा की जाती थी, उससे सब दिशायें सुगन्धित हो जाती थीं; इस कारण उसका 'गन्धकुटी' नाम सार्थक था। सैकड़ों मोतियोंकी मालाओं, सैकड़ों फूलोंकी मालाओं और सैकड़ों तरहके रत्नोंके आभूषणोंसे

शोभित वह गन्धकुटी स्वर्गकी शोभाको हँस रही थी—शोभामें वह स्वर्गसे भी बढ़कर थी। दिव्य छत्रत्रय, चँवर, ध्वजा आदिसे वह भगवान्का त्रिलोकस्वामीपना प्रगट रही थी। भगवान्की स्तुति करते हुए देवतोंके शब्दोंके बहाने वह सरस्वतीका रूप धारणकर नेमिप्रभुकी स्तुति करती हुई जान पड़ती थी। जिनपर भौंरे गूँजते हैं ऐसे देवगण द्वारा बरसाये हुए फूलोंकी सुगन्धसे वह सब दिशाओंको सुगन्धित बना रही थी। उसके बीचमें सोनेका चमकता हुआ सुन्दर सिंहासन नाना तरहके रत्नोंकी प्रभासे युक्त उन्नत मेरुके शिखर-सदृश जान पड़ता था। उसपर चार अंगुल अन्तरीक्ष आकाशमें केवलज्ञान-रूपी सूरज, त्रिजगत्स्वामी नेमिजिन विराजे हुए थे। उस उन्नत सिंहासनपर विराजे हुए नेमिजिन अपने प्रभावसे त्रिलोक-शिखरपर विराजे हुए सिद्ध भगवान्से शोभित हो रहे थे। उस सिंहासनपर विराजे हुए भगवान् नेमिजिनपर देवतागण फूलोंकी वरसा कर रहे थे। मन्दार, पारिजात आदि मनोहर फूलोंकी उस वरसाने सब दिशाओंको सुगन्धित बना दिया था। सारे समवशरणको लेकर नेमिजिन-पर गिरती हुई वह पुष्पवृष्टि मेघ-वर्षासी जान पड़ती थी। देवोंके स्तुति-पाठके शब्द और भौंरोंके झंकारसे वह पुष्प-वर्षा जिनस्तुति करती हुई जान पड़ती थी। गन्धोदकसे युक्त उस पुष्पवृष्टिने त्रिजगत्का हित करनेवाली निर्मल गन्ध-विद्याके सदृश सबको सुगन्धमय बना दिया था। नेमिप्रभु

जिस अशोक वृक्षके नीचे बैठे थे उसका मूलभाग वज्रका और क्षायिकभावके समान दृढ़ था। वह वृक्ष हरिन्मणिके पत्ते और पद्मरागमणिके हितकारी फूलोंसे कल्पवृक्षसा जान पड़ता था। जो लोग उस वृक्षको देखते थे और जो उसका आश्रय लेते थे उनका सब शोक-सन्ताप नष्ट होकर उन्हें अनन्तसुख प्राप्त होता था। हवाके वेगसे जो उसकी डालियाँ हिलती थीं और फूल गिरते थे उससे वह हाथोंको फैलाकर नाचता हुआ जान पड़ता था। उसकी डालियों डालियोंपर शब्द करते हुए पक्षिगणके बहानेसे मानों वह नेमिजिनके मोह विजयकी घोषणा कर रहा है। जिनका वृक्ष भी लोगोंके शोकको दूरकर सुख देता था तब उन नेमिप्रभुकी महिमाका क्या कहना। भगवान्‌के ऊपर शोभित श्वेत छत्रत्रय, त्रिभुवनके लोगोंको प्रिय भगवान्‌का यश-समूहसा जान पड़ता था। चन्द्रकान्तमणिसे भी कहीं बढ़कर स्वच्छ प्रभुका वह छत्रत्रय भव्य-जनोंको मुक्तिके मार्ग रत्नत्रयकी सूचना कर रहा था। उस छत्रत्रयका दण्ड अनेक सुन्दर मोतियोंकी मालाओंसे युक्त था। उसपर रत्नोंकी जड़ाईका काम हो रहा था। प्रभुके मस्तकपर स्थित वह स्वच्छ और विशाल छत्रत्रय लोगोंको नेमिजिनके त्रिलोक-साम्राज्यके स्वामी होनेकी सूचना कर रहा था। नाना तरहके आभूषणोंको पहरे हुए देवतागण बड़ी भक्तिसे भगवान्‌पर चँवर ढोर रहे थे। वे चौसठ दिव्य चँवर नेमिप्रभुरूपी पर्वतके चारों ओर

बहनेवाले झरनेसे जान पड़ते थे । जिनपर ढुरती हुई वह निर्मल चँवरोंकी श्रेणी उज्ज्वल पुष्पवर्षासी जान पड़ती थी । वह चन्द्रमाकी किरण समान निर्मल चँवर-श्रेणी प्रभुकी सेवा करनेको आई हुई भाव-लेश्यासी जान पड़ती थी। उस समय देवगणने नाना तरहके बाजे और नगाड़े खूब बजाये। उनकी ध्वनिसे आकाश भर गया। हर समय ताल, कंसाल, मृदंग, नगाड़े आदि बाजोंकी ध्वनि आकाशमें गूँजा ही करती थी। मोह-शत्रुपर विजयलाभ करनेसे प्राप्त वह वाद्य-सम्पत्ति मानों आकाशमें प्रभुका जयजयकार कर रही थी। देवगणके द्वारा आकाशमें बजाये गये नगाड़ोंकी आवाजसे सारा जगत् शब्दमय होगया।

भगवान्‌के दिव्य देहके प्रभा-मण्डलने अपनी कान्तिसे सारे समवशरणको प्रकाशित कर दिया। कोटि सूरजके तेजको दबानेवाला वह निर्मल भामण्डल लोगोंके नेत्रोंको बड़ा आनन्द दे रहा था। उसे देखकर बड़ा आश्चर्य होता था। सारे जगत्‌को तन्मय करनेवाला वह प्रभुका सुन्दर भामण्डल मिथ्यात्व अन्धकारको नष्ट करनेवाला एक अपूर्व सूरजसा जान पड़ता था। देव, विद्याधर, मनुष्य आदि उस निर्मल भामण्डलमें काचमें मुँह देखनेकी तरह अपने सात भवोंको देख लेते थे। जिनके शरीरकी प्रभाका ऐसा प्रभाव था उनके त्रिकाल-प्रकाशक ज्ञानका क्या कहना।

नेमिजिनके मुख-कमलसे निकली हुई दिव्यध्वनि पापा-

न्धकारका नाशकर जगत्के पदार्थोंको दिखा रही थी-उनका ज्ञान करा रही थी। भगवान्की दिव्यध्वनि नाना देशोंमें उत्पन्न हुए और नाना प्रकारकी भाषा बोलनेवाले लोगोंको भी प्रबोध देती थी--उसे सब अपनी अपनी भाषामें समझ लेते थे। जिनभगवान्की महिमा तो देखो जो एक प्रकारकी ध्वनि होकर भी नाना देशोंके लोगोंको प्राप्त होकर वह सैकड़ों भाषारूप हो जाती थी। जैसे मीठा पानी नाना वृक्षोंको प्राप्त होकर नाना तरहके रसरूप हो जाता है उसी तरह दिव्यध्वनि भी हर देशके लोगोंके सम्बन्धसे नाना-रूप हो जाती है। और जैसे निर्मल स्फटिक नाना रंगोंके सम्बन्धसे नाना रंगरूप हो जाता है उसी तरह दिव्यध्वनि भी आधारके अनुरूप सैकड़ो भाषामय बन जाती है। वह जिनभगवान्की अक्षरमयी ध्वनि सब तत्वोंकी ज्ञान करानेवाली और एक योजनतक सुनाई पड़नेवाली थी। उसने सातों तत्त्व, नौ पदार्थ और लोकालोकके स्वरूपको प्रकाशित कर दिया था। जगत्का सन्ताप हरनेवाली वह नेमि जिनकी ध्वनि सुख देनेवाले मेघ-सदृश जान पड़ती थी। इस प्रकार इन्द्रने कुवेर द्वारा समवशरणकी रचना करवाई। वह समवशरण लोगोंके मनको वड़ा मोहित कर रहा था।

इसके वाद सौधर्मेन्द्र आदि बत्तीसों इन्द्र असंख्य देव-देवाङ्गनाओंके साथ अपने अपने ऐरावत हाथी आदि विमानोंपर सवार होकर स्वर्गीय ठाठ-बाटसे आकाशमें चले।

छत्र, धुजा आदिसे शोभित विमानोंपर बैठे हुए वे देवतागण जयजयकारके साथ फूलोंकी बरसा करते हुए आ रहे थे। दूरहीसे उन्होंने उस त्रिभुवन-श्रेष्ठ समवशरणको देखा— मानों हवासे फहराती हुई धुजाओंके बहाने वह उनको बुला रहा है। बड़े आनन्दसे उन्होंने उस सुख देनेवाले समवशरणकी तीन प्रदक्षिणा कर उसमें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने, लोकशिखरपर विराजमान सिद्धकी तरह दिव्य सिंहासनपर विराजमान, अनन्तचतुष्टय युक्त, चौंतीस महा आश्चर्यसे सुशोभित, चारों दिशाओंमें चार मुँहवाले, जिनपर चँवर ढुर रहे हैं, और पृथ्वीतलको पवित्र करनेवाले, जगत्पवित्र, त्रिभुवनाधीश नेमिजिनको देखे। बड़ी भक्तिसे देवतोंने नाना तरहके द्रव्यों द्वारा उनकी पूजा की। उनके चरणोंमें उन्होंने सोनेकी झारीसे पवित्र तीर्थोंके जलकी धारा दी। वह शीतल, सुगन्धित और सुख देनेवाली पवित्र जलधारा भव्यजनकी पवित्र मनोवृत्तिके समान शोभित हुई। चन्दन, केशर, अगरु आदि सुगन्धित पदार्थोंके विलेपनसे उन्होंने जिनके चरणोंकी पूजा की। कान्तिसे चमकते हुए मोतियोंको चढ़ाया। जिनकी सुगन्धसे दसों दिशायें सुगन्धित हो रही थीं ऐसे जाती, चंपक, कुन्द, मन्दार आदिके फूलोंको उनके चरणोंमें भेंट किया। दुःख दरिद्रता आदि कष्टोंको नाश करनेवाले, पवित्र अमृतमय नैवेद्यको चढ़ाया। श्रेष्ठ रत्नोंके दीपकोंसे उन केवलज्ञानरूपी सूरज और संसारसे पार

करनेवाले नेमिजिनकी बड़ी भक्तिसे अर्चा की। श्रेष्ठ काश्मीर, चन्दन, अगुरु आदिसे बनी हुई, रूप-सौभाग्यकी देनेवाली और सुन्दर सुगन्धित धूप उनके आगे जलाई। स्वर्गीय कल्पवृक्षोंके फलोंसे उन स्वर्ग-मोक्षको देनेवाले नेमिजिनकी बड़ी भक्तिसे पूजा की। इसके बाद देवतोंने स्वर्णपात्रमें रखा हुआ, सैकड़ों सुखोंका देनेवाला पवित्र अर्घ जिनपर उतारा। इस प्रकार उन देवगणने महा भक्तिसे नेमिजिनकी पूजा कर फिर स्तुति करना प्रारंभ किया।

हे नाथ, आप त्रिभुवनके स्वामी और मिथ्यान्धकारको नाश करनेवाले केवलज्ञानरूपी महान् प्रदीप हो। सब विद्याओंके स्वामी, त्रिलोकके भूषण और त्रिभुवनके गुरु हो। जीवोंके माता, पिता और बन्धु हो। लोगोंको आश्रयदाता, सबके हितकर्त्ता, पितामह, त्रिभुवन प्रिय और भयसे डरे हुए लोगोंके रक्षक हो। सब सुखोंके कारण, गुण-सागर, सुरासुर-पूज्य और सप्त तत्वोंके जानकार हो। अनन्त संसार-समुद्रसे पार करनेवाले, संसारका भ्रमण मिटानेवाले, देव होकर भी देव-पूज्य और कर्म-मल रहित, निर्मद हो। आपको किसी प्रकारका रोग नहीं, कोई बाधा नहीं। आप निष्कलंक, निष्पाप और जीवमात्रपर समबुद्धि होनेपर भी भक्तजनोंको मनचाही वस्तुके देनेवाले हो। वीतराग हो, आनन्द देनेवाले हो। सिद्ध, बुद्ध, विरागी, विशुद्ध और संसारके एक दूसरे पिता हो। आप सुख देनेवाले

हो, इस कारण 'शंकर' हो। आपने कर्मोंको जीत, लिया इसलिए आप 'जिन' कहलाये। आप सर्वज्ञ, गुणज्ञ और सब सन्देहोंके नाश करनेवाले हो। प्रभो, आपने धर्मतीर्थका प्रचार किया, इस कारण आप तीर्थनाथ हो। आपका केवलज्ञान त्रिभुवन-व्यापी है, इस कारण लोग आपको विष्णु कहते हैं। आप परम ज्योतिस्वरूप, त्रिलोक-बन्धु, और कर्मशत्रुके नाश करनेवाले हो। आप आत्म-तत्वको जानते हो, इस कारण आपको मुनिजन ब्रह्मा कहते हैं। आप धीर-वीर गंभीर, और सुख देनेवाले हो। लोकमें दिव्य चिन्तामणि और कल्पवृक्ष आप ही कहे जाते हो। आप नाथ, पति, प्रभाधीश, कामद, कामहा, कामदेव और देव-पूज्य हो। आपको बड़े बड़े विद्वान् पूजते हैं। आप सर्व पदार्थोंका प्रकाश करते हो, इस कारण वचनरूपी किरणोंके धारक सूरज हो। आप धर्माधिपति, सबमें प्रधान और परम उदयशाली हो। आप वाक्यामृतके श्रेष्ठ समुद्र, दयासागर, बुद्धिशाली, मुक्तिके स्वामी, और दिव्य रत्नत्रय-स्वरूप हो। आप श्रेष्ठ मंगल श्रेष्ठ कवि, और सत्पुरुषोंके श्रेष्ठ आश्रय हो। आप सन्तापके नाश करनेवाले चन्द्रमा, सुन्दर चारित्रके भूषण, मुनीन्द्र, विवेकी, पवित्रहृदय और मुनिजन-वन्द्य हो। आप अनन्त गुणयुक्त, अनन्तचतुष्टय-विराजित, सबके हितकारी दिव्य-शरीर और बड़े सुन्दर हो। पवित्रसे पवित्र लोग आपकी सेवा करते हैं। आपने संसार-समुद्र पार कर लिया। आपको कोई

आपद-विपद नहीं। आप लोगोंको परमानन्दके देनेवाले हो। आपने मोक्ष सुखप्राप्त कर लिया। नाथ, आपमें तो अनन्त निर्मल सुख देनेवाले अनन्त गुण हैं और हम हैं बड़े ही थोड़ी बुद्धिके धारक,फिर हम आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं? पर नाथ, बुद्धि न होनेपर भी भक्तजन तो अपने प्रभुकी स्तुति करते ही हैं। प्रदीप क्या तेजस्वी सूरजकी पूजा नहीं करता। अथवा भक्त जनसे कौन नहीं पुजता। इसी तरह नाथ, केवल भक्तिवश होकर ही हमने आपकी स्तुति करनेकी हिम्मत की है। प्रभो, इस प्रकार स्तुति कर हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि, आप हमें अपनी मोक्षकी कारण भक्ति दीजिए। इस प्रकार देवगण केवलज्ञान-विराजमान नेमिजिनकी स्तुति कर अपने अपने कोठोंमें जा बैठे। इन देवतोंकी तरह इन्द्रानी आदि देवाङ्गनाओंने भी परमानन्दित होकर नेमिजिनके सुख-दाता चरणोंकी पूजा की।

नेमिजिनके केवलज्ञानकी खबर मिलते ही त्रिखण्डपति बलदेव, श्रीकृष्ण भी अपनी सब सेना तथा परिवारके साथ गिरनार पर्वतपर गये। समवशरणमें जाकर उन्होंने नेमिजिनकी तीन प्रदक्षिणा की और बड़े आनन्दसे 'नन्द' 'जीव' 'रम' कहकर भगवानका जयजयकार किया। उन लोकश्रेष्ठ निधि नेमिजिनको देखकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए। इसके बाद उन्होंने चन्दनादि श्रेष्ठ द्रव्योंसे बड़ी भक्तिके साथ उन श्रेष्ठ सम्पदाके देनेवाले और संसार-समुद्रसे पारकर मोक्ष

प्राप्त करानेवाले नेमिजिनकी पूजा की । नेमिजिन एक तो बलदेव-कृष्णके कुटुम्बी और दूसरे जिन, अतएव उन्होंने जो भक्ति की, उसका कौन वर्णन कर सकता है। पूजनके बाद उन्होंने नेमिजिनकी स्तुति की-हे त्रिभुवनाधीश, आपकी जय हो । हे नाथ, आप देवता-गण द्वारा पूज्य हो । धर्मचक्र चलानेमें चक्रकी धार हो और केवलज्ञानरूपी दीपकसे लोकालोकको प्रकाशित कर रहे हो । प्रभो, आप जगत्के बन्धु तो हो ही, पर हमारे विशेष कर बन्धु हो । आपकी दिव्य मूर्तिको देखकर बड़ा आनन्द होता है । आपकी कीर्त्ति सर्वत्र व्याप्त है । भव्यजनोंको आप सद्गतिके देनेवाले हो । आप रक्षक, संसारसे पार करनेवाले और महान् पवित्र हो । यादव-वंशरूपी कमलको प्रफुल्ल करनेवाले श्रेष्ठ आप सूरज हो । नाथ, इस संसारको रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गको दिखानेवाले वास्तवमें आप ही हो । हे जगद्गुरु, आपके अनन्त केवलज्ञानको प्रकाशित होनेपर सूर्य-तेजसे नष्ट हुए जुगनुकी तरह सब कुवादी लोग छुप गये । इसलिए हे नाथ, आप ही देवोंके देव हो, जगद्गुरु हो, सब सन्देहोंके नाश करनेवाले हो, सुख देनेवाले हो और पूज्य भी आप ही हो । हे भगवन्, समवशरण आदि ये सब आपकी बाह्य विभूति है। जब इसका ही कोई वर्णन नहीं कर सकता तब अन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यरूप अन्तरङ्ग विभूतिका तो कौन वर्णन कर सकता है ? नाथ, आप त्रिलोकके स्वामी और लोकालोकके प्रकाशक हो ।

हमें आप हाथका सहारा देकर इस संसार-समुद्रसे पार करो। इस प्रकार नेमिजिनकी पूजा-स्तुति कर और बार बार उन्हें नमस्कार कर त्रिखण्डाधीश बलदेव और श्रीकृष्णने अपनें आत्माको कृतार्थ किया। इसके बाद समवशरणमें विराजे हुए अन्य मुनिजनोंको बड़े हँसमुखसे नमस्कार कर वे अपने परिवारके साथ मनुष्योंकी सभामें जा बैठे। उस समय उन बारह सभाओंमें बैठे हुए देव-मनुष्य, वगैरहसे नेमिजिन, खिले हुए कमलोंसे युक्त सरोवरकी तरह शोभित हुए।

पहली सभामें बैठे हुए शुद्ध मनवाले मुनिजन सुख देनेवाले स्वर्गमोक्षके मार्गसे जान पड़ते थे। दूसरी सभामें भक्ति-परायण स्वर्गकी सुन्दर देवाङ्गनायें बैठी हुई थीं। तीसरी सभामें सम्यक्त्व धारण किये हुई और जिनपूजा-परायण श्राविकायें और आर्यिकायें थीं। चौथी सभामें चमकती हुई शरीर-प्रभासे दिव्य-भक्ति सदृश जान पड़नेवाली चाँद-सूरज आदि ज्योतिष्क देवोंकी स्त्रियाँ थीं। पाँचवीं सभामें दिव्य-प्रभाकी धारक और जिनभक्ति-रत व्यन्तरोंकी देवियाँ थीं। छठी सभामें जिनचरण-सेविका पद्मावती आदि नागकुमार देवोंकी सुन्दर देवाङ्गनायें थीं। सातवीं सभामें धरणेन्द्र, नागकुमार आदि दस प्रकार जिनभक्त देवता थे। आठवींमें जिनभक्त और जिनवाणीका आदर करनेवाले किन्नर आदि आठ प्रकारके व्यन्तर देव थे। नौवींमें अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशमय करदेनेवाले चाँद-सूरज आदि पाँच प्रकार

ज्योतिष्क देव थे। दसवींमें बारह प्रकार कल्पवासी देवता-गण सौधर्म आदि प्रधान प्रधान देवोंके साथ बैठे हुए थे। ग्यारहवींमें सम्यक्त्वव्रत-भूषित और दान-पूजा आदि शुभ-कर्मोंको करनेवाले मनुष्यगण मुख्य मुख्य राजोंके साथ बैठे हुए थे। बारहवीं सभामें दयावान् और सम्यक्त्वी सिंह आदि पशुगण बैठे हुए थे। वे बड़े क्रूर पशु भी जिन-भगवान्की महिमासे परस्परकी शत्रुता छोड़कर मिलकर सुखसे एक जगह बैठ गये। इस प्रकार इन बारह सभाओंमें बैठे हुए देव-मनुष्यादि द्वारा सेवा किये गये जगच्चिन्तामणि श्रीनेमिप्रभु बड़े ही शोभित हुए। उन सबके बीचमें भगवान् नेमिजिन दिव्य सिंहासनपर विराजमान थे। तीन छत्र उन-पर शोभा दे रहे थे। उनका सिंहासन दिव्य अशोकवृक्षके नीचे था। देवगण उनपर चँवर ढोर रहे थे। इन्द्र फूलोंकी वर्षा कर रहा था। नगाड़ोंकी ध्वनिसे सब दिशायें गूँज रही थीं। कोटि सूरजके समान तेजस्वी भगवान्के भामण्डलने सब ओर प्रकाश ही प्रकाश कर रक्खा था। देव-मनुष्य-विद्याधर आकर भगवान्की पूजा कर रहे थे। सोलहकारणभाव-नाके पुण्य-बलसे भगवान्को महान् अतिशयवती दिव्य-ध्वनि प्राप्त थी। अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्त सुख इन चार अनन्तचतुष्टयसे भगवान् विराजित थे। इस प्रकार शोभायुक्त त्रिजगद्गुरु नेमिप्रभुने भव्यजनके पुण्यसे प्रेरणा किये जाकर तीर्थंकर पुण्य-प्रकृतिसे प्राप्त अक्षरमयी दिव्यध्वनि द्वारा

सात तत्त्वोंका विस्तारसे उपदेश किया। वास्तवमें नेमिजिन त्रिजगत्के स्वामी और लोकालोकके प्रकाशक थे। अब कुछ सुख-कर्त्ता नेमिप्रभुके समवशरणमें उपस्थित मुनिजन वगैरहकी संख्याका प्रमाण लिखा जाता है।

त्रिजगत्स्वामी नेमिजिनके चरण-रत वरदत्त आदि ग्यारह गणधर थे। वे गणधर केवलज्ञानरूपी साम्राज्य-लक्ष्मीके प्रभु नेमिजिनके युवराजसे जान पड़ते थे। उन्होंने जिन-प्रणीत तत्व-संग्रहके अनेक ग्रन्थ नाना रचनाओंमें रचे थे। चार-सौ आचार्य थे। वे अंग-पूर्व-प्रकीर्णक आदि सकल श्रुतके विद्वान् थे। ग्यारह हजार आठ-सौ उपाध्याय थे। सुन्दर चारित्रके धारक मति-श्रुत-अवधि-ज्ञानी मुनि १९ सौ थे। इतने ही, लोगोंको परम सुखके देनेवाले, भव-सागरसे पार करनेवाले और लोकालोकके प्रकाशक केवलज्ञानी मुनि थे। २१ सौ विक्रियाऋद्धिधारी मुनि जिनवचनामृतका पान करनेको विराजे थे। दूसरोंकी मनोवृत्तिके जाननेवाले ९ सौ मनःपर्ययज्ञानी मुनि थे। मिथ्यावादियोंके मतरूपी अन्धकारके नाश करनेको सूरज-सदृश वादी मुनि ८ सौ थे। इस प्रकार वे सब रत्नत्रय-विराजमान मुनि १८ हजार थे। यक्षी, राजीमती, कात्यायनी आदि सब मिलाकर आर्यिकायें ४४ हजार थीं। जिनभगवान्के ध्यानमें मन लगाये हुई वे आर्यिकायें शुद्ध सरस्वतीके सदृश जान पड़ती थीं। सम्यक्त्वी, व्रत-दान-पूजा आदिमें रत श्रावक जन

१ लाख थे। मिथ्यात्व रहित, पात्रदान-पूजा-व्रत आदिमें तत्पर ३ लाख श्राविकायें थीं। चारों प्रकारके देव-देवाङ्गना-ओंकी कोई संख्या न थी– वे असंख्य थे। शान्त-मन सिंह आदि पशु नेमिजिनके चरणोंमें बैठे थे, उनकी भी संख्या अनगिनतीकी थी। इस प्रकार नेमिजिनके पुण्यसे बारहों सभाओंमें देव-मनुष्यादिक अपने अपने योग्य स्थानपर सुख-भक्ति-आनन्द-के साथ बैठे हुए थे। वहाँ वे सदा धर्मामृत-पानसे पुष्ट होकर बड़े हँसमुख रहते थे।

केवलज्ञान-विराजित नेमिप्रभुकी, त्रिभुवनके जनको परम आनन्द देनेवाली जिस रत्नमयी सभाको इन्द्रकी आज्ञासे कुबरने बनाया, उसका मुझ सरीखे अल्पज्ञानी क्या वर्णन कर सकते हैं ? उस सुखमयी सभाका यह तो मै कोई क्रोड़वें अंश भी वर्णन नहीं कर पाया हूँ। पर अमृत पीनेको न मिले तो उसका छू लेना भी सुखकर है। इन्द्रादि देवतागण जिनकी विभूतिका जब वर्णन नहीं कर सकते तब मेरी तो क्या चली ? तौ भी जिनभक्तिके प्रभावसे उसका मैंने कुछ वर्णन किया। वह त्रिभुवनजन-सेवनीय सभा कल्याण करे–सुख दे।

इस प्रकार श्रेष्ठ विभूतिसे जो शोभित है, केवलज्ञान द्वारा लोकालोकका प्रकाश करनेवाले हैं, देवतागण जिन-की सदा सेवा-पूजा करते है और जिनने जगत्‌को धर्मामृतके

पान द्वारा सन्तुष्ट कर उसका सन्ताप नष्ट कर दिया वे श्री नेमिप्रभु सब जगत्को श्रेष्ठ सुख दें।

जिन्हें केवलज्ञान होनेपर देव-देवाङ्गना-गणने सुखमयी सभा निर्माण कर भक्तिभरे शुद्ध हृदयसे श्रेष्ठ आठ द्रव्यों द्वारा जिनके चरणोंकी पूजा की, वे नेमिजिन भव-भय हरकर उत्तम सुख दें।

इति दशमः सर्गः।

ग्यारहवाँ अध्याय ।

नेमिजिनका पवित्र उपदेश ।

देव-गण-पूजित और केवलज्ञान-भास्कर श्रीनेमिप्रभु तीर्थङ्कर नाम पुण्यकर्मसे प्राप्त दिव्यसिंहासनपर आठ प्रातिहार्योंसे युक्त विराजे हुए आकाशमें प्रकाशमान चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे । उस सिंहासनसे चार अंगुल ऊपर निराधार आकाशमें बैठे हुए भगवान भव्यजनके पुण्यकी प्ररणासे हितकारी धर्मका उपदेश करने लगे । कर्म-अंजन रहित उन भगवान्‌के मुख-कमलसे त्रिलोक-श्रेष्ठ और लोगोंके मनको प्रसन्न करनेवाली दिव्यध्वनि खिरी । उस ध्वनिमें तालु, ओठ, दाँत आदिका सम्बन्ध न था । भगवान् इच्छा करके कोई उपदेश करनेको प्रवृत्त नहीं हुए थे, तो भी उनके माहात्म्य और भव्यजनके पुण्यसे उनका उपदेश हुआ । सुखमयी वह जिनकी दिव्यध्वनि साक्षर थी; क्योंकि उसे सब देशोंके लोग अपनी अपनी भाषामें समझ लेते थे । कमलिनीको प्रफुल्ल करनेवाले सूरजके समान नेमिप्रभुने अपनी वचनमयी किरणोंसे उन बारहों सभाको प्रसन्न करते हुए जिस समुद्र-सदृश गंभीर, और सुख देनेवाले धर्मके भेदोंको कहा, उन्हें कहनेको कोई समर्थ नहीं । तो भी—बुद्धिके न रहनेपर भी केवल भक्ति-वश होकर पूर्वाचार्योंका अनुकरण कर हितकर्त्ता धर्मका कुछ स्वरूप कहनेका मैं साहस करता हूँ ।

मन-वचन-कायपूर्वक धर्मका पालन करनेसे वह लोगोंको उत्तम सुख देता है। पूर्वाचार्योंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन रत्नत्रयको श्रेष्ठ धर्म कहा है। इनमें सच्चे देव-गुरु-शास्त्र और जिनप्रणीत अहिंसामयी धर्ममें प्रीति-रुचि-विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं। जैसे सिर, मुँह, हाथ, पाँव आदि आठ सुदृढ़ अङ्गोंसे यह मनुष्य-शरीर सुन्दर देख पड़ता है उसी तरह यह सम्यग्दर्शन भी बिना आठ अंगोंके शोभाको प्राप्त नहीं होता। और जैसे साणपर चढ़ाया हुआ रत्न मेलरहित होकर निर्मल हो जाता है उसी तरह तीन मूढ़ता, आठ प्रकारके गर्व आदि मलरहित शुद्ध सम्यग्दर्शन बड़ी ही निर्मलता लाभ करता है।

ऊपर जो देव-गुरु-शास्त्रके विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहा, उनमें देव वह है जो दोषोंसे रहित हो। वे दोष अठारह हैं। उनके नाम हैं—भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, शोक, जनम, मरण, भय—डर, निद्रा, राग, द्वेष, विस्मय, चिन्ता, रति, गर्व, पसीना, खेद—दुःख, और मोह। जो इन दोषोंसे रहित, सर्वज्ञ, स्नातक—परिग्रहादिरहित, परम निर्ग्रन्थ, जिन, कर्म-अंजनरहित और परमेष्ठी हैं वही सच्चे देव हैं। अपने स्वभावमें स्थिर इन जिनभगवान्‌ने जो परस्पर विरोधरहित शास्त्र कहा, जीव-अजीवादि तत्वोंका स्वरूप प्रगट करनेवाला वही लोकमें पवित्र शास्त्र है और वही शास्त्र स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाला है।

जो ग्रह-सदृश कष्ट देनेवाले बाह्य और अन्तरङ्ग परिग्रह रहित, निर्ग्रन्थ, परमार्थके जाननेवाले, ज्ञान-ध्यान-तप-योग-में सावधान, परम दयालु, क्षमावान् और परम ब्रह्मचारी हैं, वे सच्चे गुरु या तपस्वी हैं और सब जीवोंका हित करनेवाले हैं। इस प्रकार देव-गुरु-शास्त्रके विषयमें जो संज्ञी भव्यका संशयादि दोषरहित विश्वास है उसे ही आचार्योंने सुख देनेवाला सम्यग्दर्शन कहा है।

कर्मबन्धके कारण संसार-शरीर-भोग आदिके सुखमें मन-वचन-कायसे इच्छा—चाहका न होना 'निष्कांक्षित' नाम दूसरा सम्यग्दर्शनका अंग है। शरीर अपवित्र वस्तुओंसे भरा है, परन्तु रत्नत्रयका साधन है। इस कारण यदि किसी धर्मात्मा या अन्य जनके शरीरमें कोई रोगादिक हो जाय तो उससे घृणा न करना वह 'निर्विचिकित्सा' नाम तीसरा अंग है। कुमार्ग और कुमार्गी मनुष्योंसे प्रेम न करना उनकी प्रशंसा न करना वह 'अमूढ़दृष्टि' नाम चौथा अंग है। शुद्ध जिनधर्मकी अज्ञानी और मूर्खजनके सम्बन्धसे यदि निन्दा-बुराई होती हो तो उसे ढक देना वह, 'उपगूहन' नाम पाँचवाँ अंग है। यदि कोई प्रमाद—असावधानी या कषायसे दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप पवित्र मार्गसे उलटा जा रहा हो—गिर रहा हो उसे उसी मार्गमें फिर दृढ़ कर देना वह 'स्थितिकरण' नाम छठा अंग है। धर्मात्मा जनके साथ छल-कपट-मायाचार रहित प्रेम करना वह सुखका

साधन सातवाँ 'वात्सल्य' नाम अंग है। मिथ्या-अज्ञान-रूप अन्धकारको नष्ट करके अपनी शक्तिके अनुसार नाना प्रयत्न द्वारा जैनधर्मका प्रचार करना वह 'प्रभावना' नाम आठवाँ सम्यग्दर्शनका अंग है। इन आठ अंगों या गुणोंसे पूर्णताको प्राप्त पवित्र सम्यग्दर्शन विष-वेदनाको नष्ट करनेवाले मंत्रकी तरह कर्मोंका नाश करनेवाला है। ये तो हुए सम्यग्दर्शनके आठ गुण। इसके सिवा शंकादिक आठ दोष, छह अनायतन, तीन मूढ़ता और आठ मद ये पच्चीस उसके दोष हैं। इनका खुलासा इस प्रकार है। कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु और इन तीनोंके भक्त, ये छह 'अनायतन' हैं-धर्म प्राप्तिके स्थान नहीं हैं। मिथ्यात्वियोंकी तरह सूरजको अर्घ देना, ग्रहण वगैरहमें नहाना, संक्रांतिमें दान करना, सन्ध्या, अग्नि, देव, घर, गाय, घोड़ा, गाड़ी, पृथ्वी, वृक्ष, सर्प आदिकी पूजा करना, नदी-समुद्रमें नहाना, पत्थर-रेती वगैरहका ढेरकर उसे पूजना, पर्वतपरसे या अग्निमें गिरना, यह सब 'लोकमूढ़ता' है। अथवा विष-भक्षण, शस्त्र वगैरहसे आत्मघात कर लेना—ये सब महापापके कारण है। पंडितोंने इनके द्वारा सदा संसार-भ्रमण होना बतलाया है। वरकी इच्छा या लोभसे रागी-द्वेषी देवोंकी सेवा-भक्ति करना 'देव-मूढ़ता' है। नाना घरगिरिस्तीके आरंभ-सारंभ करनेवाले, संसाररूपी गढ़ेमें आकण्ठ फँसे हुए और विषयोंकी चाह करनेवाले ऐसे पाखण्डियोंकी सेवा-पूजा करना 'पाखण्डि-मूढ़ता' है। इस

प्रकार इन तीन मूढ़ता और छह अनायतन-रहित सब व्रतोंके भूषण सम्यग्दर्शनका पालन करना चाहिए।

इसके सिवा सम्यग्दृष्टिको यह जानकर, कि जिनप्रणीत धर्मके पात्र अभिमानी-गर्विष्ठ लोग नहीं हैं, आठ प्रकारका गर्व या अभिमान छोड़ देना चाहिए। वे आठ गर्व ये हैं—ज्ञानका गर्व, पूजा-प्रतिष्ठाका गर्व, कुलका गर्व, जातिका गर्व, बलका गर्व, धन दौलतका गर्व, तपका गर्व और रूप-सुन्दरताका गर्व । ये बातें मूर्खोंको गर्वकी कारण हैं। बुद्धिमान् समझदारको नहीं । इस प्रकार पचीस मल-दोष रहित जो सम्यग्दर्शन है वही दोनों लोकमें हित करनेवाला है। केवलज्ञानी जिनने इस सम्यक्त्वके उपशमसम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व और क्षयोपशमसम्यक्त्व ऐसे तीन भेद किये हैं । मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यङ्मिथ्यात्व तथा अनन्ता-नुबन्धि-क्रोध-मान-माया-लोभ ऐसी चार कषाय, इन सातों प्रकृतियोंके उपशमसे जो हो वह 'उपशमसम्यक्त्व' है, इनके क्षयसे जो हो वह 'क्षायिकसम्यक्त्व' है और जिसमें इन सातों प्रकृतियोंकी कुछ उपशम और कुछ क्षय दशा हो—दोनोंका मिश्रण हो वह 'क्षयोपशमसम्यक्त्व' है। सम्यक्त्वका यह सब लक्षण व्यवहारसे कहा गया और निश्चयसे सम्यक्त्वका लक्षण है—मोह-क्षोभरहित केवल शुद्ध आत्मभावना । अन्य आचार्योंने संवेग, निर्वेद, आत्मनिन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकम्पा ये सम्यक्त्वके आठ गुण

कहे हैं। इस प्रकार मोक्ष-कारण, सुख देनेवाले सम्यग्दर्शनका जो जन पालन करते हैं वे ही सम्यग्दृष्टि हैं। जैसे सुदृढ़ नींव मकानकी रक्षा करती है उसी तरह दान-तप-आदि सम्यक्त्वकी रक्षाके कारण हैं। इस सम्यक्त्व-रत्नका धारक जिन सेवा करनेवाला भव्य दुर्गतिके बन्धनोंको काटकर मुक्ति स्त्रीका स्वामी होता है। वह नरकगति और तिर्यंचगतिमें नहीं जाता, नपुंसक और स्त्री नहीं होता, नीच कुलमें नहीं जन्म लेता, रोगी, दरिद्री और अल्पायु नहीं होता। किन्तु वह देवता, चक्रवर्ती आदिकी नाना भोग-विलास और सुखकी कारण, मनको मोहित करनेवाली सम्पदाको उस सम्यक्त्वके प्रभावसे प्राप्त करता है और अन्तमें श्रेष्ठ रत्नत्रय धारणकर मोक्ष जाता है। सत्पुरुषो, इस संसारमें सम्यक्त्व ही एक ऐसी श्रेष्ठ वस्तु है, जिससे सब सुख प्राप्त हो सकता है। जीवके लिए हितकारी इतनी कोई अच्छी वस्तु नहीं है। एक जगह इस सम्यक्त्वकी प्रशंसामें कहा गया है— जितना एक पत्थरका गौरव है उतना ही गौरव सम्यक्त्व रहित शम-ज्ञान-चारित्र-तप वगैरहका समझना चाहिए और जब ये ही ज्ञान-चारित्र-तप सम्यक्त्व सहित हो जाते हैं तब एक बहुमूल्य रत्नकी तरह आदरके पात्र हो जाते हैं। इस कारण हर प्रयत्न द्वारा इस स्वर्ग-मोक्षके कारण सम्यक्त्वको प्राप्त करना चाहिए। संक्षेपमें पंडितोंने सत्यार्थ—देव-गुरु-शास्त्रके श्रद्धा-

न करनेको सम्यक्त्व कहा है। वह सम्यक्त्व संसार-भ्रमणसे होनेवाले दुःखों और कुगतिका नाश करनेवाला है, ज्ञान-ध्यान-तप दान आदि क्रियाओंका भूषण और धर्मरूपी वृक्षका बीज है। वह सम्यक्त्व सत्पुरुषोंको सदा स्वर्ग-मोक्षका सुख दे। इस सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके पूर्व कुदेवोंमें देवता-बुद्धि, कुगुरुओंमें गुरुपना और मिथ्या-तत्वोंमें तत्व-भावनारूप मिथ्यात्व छोड़ देना चाहिए।

इति सम्यक्त्वाधिकार।

इस प्रकार सम्यक्त्वका उपदेश कर जगद्गुरु नेमिजिनने सम्यग्ज्ञानका स्वरूप कहना आरंभ किया। वे बोले—पूर्वापरके विरोधरहित और अत्यन्त शुद्ध जो ज्ञान है वही सच्चा ज्ञान है और वही लोगोंका दूसरा नेत्र है। जिसमें सुखमयी जीवदयाका उपदेश हो वही श्रेष्ठ ज्ञान सब सम्पदाका कारण है। और जिसमें सैकड़ों दुःखोंकी कारण जीवहिंसा कही गई है वह ज्ञान नहीं—कुज्ञान—मिथ्याज्ञान है और महापापका कारण है। जिसके द्वारा लोग हिंसा झूठ-चोरी आदि पापोंको छोड़ सकें, ज्ञानीजनोंने उस ज्ञानको सब जीवोंके लिए सुखका कारण कहा है। जिसके द्वारा मूर्ख मनुष्य भी लोक-अलोक और हित-अहितको विना किसी सन्देहके जानलें वह जिन-प्रणीत ज्ञान सर्वोत्तम है। जिनभगवान्ने इस ज्ञानके अनेक भेद कहे हैं, उन्हें शास्त्रों द्वारा जानना चाहिए। उसके जो जग-हितकारी चार महा अधिकार हैं उनका स्वरूप

संक्षेपमें यहाँ लिखा जाता है। पहला 'प्रथमानुयोग' नाम अधिकार है। उसमें–शान्तिकर्ता तीर्थंकर जिनका पुण्यका कारण पुराण, उनके पंचकल्याणोंका विस्तारसहित वर्णन और गणधर, चक्रवर्ती, आदि महात्माओंका पवित्र चरित रहता है। दूसरा 'करणानुयोग' नाम अधिकार है। उसमें लोका-लोककी स्थिति, कालका परिवर्तन और चारों गतियोंके भेदोंका वर्णन हैं। यह अधिकार संशयरूपी अन्धकारको नाश कर बड़ा सुखका देनेवाला है। तीसरा 'चरणानुयोग' नाम अधिकार है। उसमें मुनियों और श्रावकोंके श्रेष्ठ चारित्र, उसकी उत्पत्ति, वृद्धि और उसके द्वारा होनेवाला सुख और फल आदि बातोंका खूब विस्तारके साथ वर्णन रहता है। चौथा मिथ्यात्वका नाश करनेवाला 'द्रव्यानुयोग' नाम अधिकार है। उसमें जीव-अजीव आदि सात तत्व, पुण्य-पाप और सुख-दुःख आदिका विस्तृत वर्णन होता है। इसके बाद केवलज्ञानी नेमिप्रभुने दिव्यध्वनि द्वारा बारह अंगोंका स्वरूप कहकर चार ज्ञानधारी गणधरों द्वारा स्वपरोप-कारके लिए जो नाना प्रकार संस्कृत-प्राकृत–भाषामे तथा अनेक छन्दोंमें अध्यात्म, दर्शन, न्याय, साहित्य आदि ग्रन्थ रचे गये, उन सबके पदोंकी संख्या बतलाई। वह संख्या है–११२ क्रोड़ ८३ लाख और ८ हजार पाँच यह जो संख्या कही गई वह ग्रन्थके परिमाणसे है, अर्थ परि-णामसे तो उसे कोई नहीं कह सकता। कोई पूछे कि इ

सब पदोंमेंसे एक पदके श्लोकोंकी संख्या कितनी होगी, तो उसका उत्तर मुनियोंने यह दिया है कि—५१ क्रोड़, ८ लाख ८४ हजार, ६ सौ २१॥ एक महापदके श्लोकोंकी संख्या है। इस प्रकार महिमा प्राप्त जिनप्रणीत श्रुतज्ञानकी केवलज्ञानकी प्राप्तिके लिए भव्यजनोंको आराधना करनी चाहिए। जिनप्रणीत यह श्रुतज्ञान लोकालोकका ज्ञान करानेवाला, अनादि-निधन और मिथ्याज्ञानका क्षय करनेवाला है। इसकी जो गुरु चरण-सेवा-रत भव्यजन भक्ति भरे स्वस्थ चित्तसे पाँच प्रकार स्वाध्यायके रूपमें आराधना करते हैं—ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न करते है वे बड़े ज्ञानी होते हैं, कला-कौशलके जाननेवाले होते हैं और सुख-सम्पदा, यश-कीर्ति लाभ करते है। अन्तमें वे सम्यग्ज्ञानके प्रभावसे सब चराचरका ज्ञान करानेवाले अनन्त सुख-समद्र केवलज्ञानको प्राप्त कर जन्म-जरा-मरण-दुख-शोक आदि रहित अनन्त सुखमय मोक्षको प्राप्त होते हैं। जैसा कि कहा गया है—ज्ञान आत्माका स्वभाव है जब वह पूर्णरूपसे उसमें विकाशको प्राप्त हो जाता है तब फिर कभी नष्ट नहीं होता और न घटता-बढ़ता है। इस कारण जो ऐसा नष्ट न होनेवाला ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें उस सम्यग्ज्ञानके प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिए। यह जानकर हे भव्यजनो, मन-वचन-कायकी शुद्धिपूर्वक सम्पदाके खान जिनप्रणीत सम्यग्ज्ञानको प्राप्त करो। जिन-भगवान्के मुख-चन्द्रसे निकले श्रुत-समुद्रकी मैं भी शरण लेता

हूँ वह मोक्ष दे । जिनप्रणीत सम्यग्ज्ञान पुण्यका कारण और मिथ्या-ज्ञानका क्षय करनेवाला है, लोकालोकके देखने-जानेको एक अपूर्व नेत्र और सन्देहका नाश करनेवाला है, जीव-अजीव आदि तत्वोंके भेदोंका वर्णन करनेवाला और ज्ञानियोंका जीवन है और सुख तथा आनन्दका देनेवाला है, वह सत्पुरुषोंको सुख दे ।

इति ज्ञानाधिकार ।

इस प्रकार ज्ञानका स्वरूप कहकर केवलज्ञानी नेमिप्रभुने सुगतिका कारण सुन्दर चारित्रका स्वरूप कहना आरंभ किया । वे बोले—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, और परिग्रह इन पाँच पापोंका छोड़ना वह चारित्र है । इस जिनप्रणीत चारित्रको इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याधर आदि बड़े बड़े लोग मानते और पूजते हैं । यह दुःख-दरिद्रता-दुर्भाग्य-दुराचार आदि पापोंका नाश करनेवाला और सुखका कारण है । इस चारित्रके मुनि-चारित्र और श्रावक-चारित्र ऐसे दो भेद हैं । हिंसा आदि पाँप पापोंका सम्पूर्णपने त्याग करनेको सकल-चारित्र या मुनि-चारित्र कहते हैं और यह साक्षात् मोक्षका कारण कहा गया है । इसी सकल त्यागको श्रेष्ट पाँच महाव्रत कहते है । इन महाव्रतके सिवा मन-वचन-काय-की शुद्धिसे उत्पन्न तीन गुप्ति और पाँच पवित्र समिति इस प्रकार ये सब मिलाकर तेरह प्रकारका श्रेष्ठ मुनि-चारित्र होता है । यह चारित्र स्वर्ग-मोक्षका देनेवाला है ।

इस चारित्रके, संसार-समुद्रसे पार करनेवाले और हितकारी भेदोंका श्रीनेमिप्रभुने बहुत विस्तारसे वर्णन किया था। वे भेद वर्णनमें मेरुसे भी कहीं उन्नत हैं। उनका वर्णन मैं नहीं कर सकता– मुझमें वैसी शक्ति नहीं। भुजाओं द्वारा समुद्रको कौन तैर सकता है। इस कारण इस विषयको छोड़कर श्रावक-चारित्रका कुछ वर्णन किया जाता है।

स्थावर-हिंसाका त्याग कर त्रस-हिंसाका त्याग करनेरूप अणु-चारित्रको श्रावक-चारित्र कहते हैं। यह चारित्र स्वर्गादिक सद्गतिका कारण है। इस सम्यक्त्व युक्त श्रावकधर्ममें पहले ही आठ मूलगुण धारण करने चाहिए। मद्य, माँस, मधु और पाँच उदुम्बरके त्यागनेको आठ मूलगुण कहते है। मद्य– शराब छोटे छोटे असंख्य जीवोंकी घर, बुद्धिका नाश करनेवाली, नीच लोग जिसे पसन्द करते हैं और हिंसाकी कारण हैं। उसे कभी न पीना चाहिए। इसीके द्वारा हजारों दुराचार-अनर्थ होते हैं और कुलका क्षय हो जाता है। शराब पीकर बेसुध हुआ मनुष्य इधर-उधर गिरता पड़ता हुआ चलता है– उसके बराबर पाँव नहीं उठते। वह कभी जमीनपर गिर पड़ता है– मल उसके शरीरसे लिपट जाता है। तब उसकी दशा ठीक कुत्तेके सदृश हो जाती है। कोई उसके पास जाकर नहीं फटकता। शराब पापबन्धकी कारण है, निन्द्य है, संसार-समुद्रमें गिरानेवाली है। इस कारण अपना हित चाहनेवाले सत्पुरुषोंको उसे

अवश्य छोड़ देना चाहिए। अधिक क्या कहा जाय, जब शराबी काम-पीड़ित होता है तब वह अपनी मा-बहिनसे भी बुरी नियत कर बैठता है और फिर उस पापसे दुर्गतिमें जाता है।

इसलिए जो विवेकी हैं, जिन्हें अपने कुलकी लज्जा है और जो दयालु हैं उन्हें धर्मसिद्धिके लिए मन-वचन-कायसे शराब पीना त्याग देना चाहिए। जिन लोगोंने इस व्रतको ग्रहण कर लिया, उन्हें साथही इतना और करना चाहिए कि वे न तो शराबियोंकी संगति करें और न आठ मदोंको करें। ऐसा करनेसे उनका व्रत और भी अधिक अधिक निर्मल होता जायगा। सावधानीके साथ जड़मूलसे नष्ट कर दिये गये रोगकी तरह यह शराबका छोड़ देना मनुष्योंको कभी कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता।

मांस, खून और मांसके मिश्रणसे बनता है, जीवोंके मारनेसे उसकी पैदायश है। अतएव वह महा पापका कारण है। अच्छे लोगोंको उसका सदाके लिए त्याग कर देना चाहिए। एक मांसका खाना ही ऐसा भयंकर पाप है कि उससे नरकोंमें बड़े घोर दुःख सहने पड़ते हैं और अनन्त कालतक संसारमें रुलना पड़ता है। मांसका स्वयं सेवन जितना पाप है दूसरेसे कराने और करते हुएकी तारीफ़ करनेमें भी वैसा ही अनन्त दुःखका देनेवाला महापाप है। महा मिथ्यात्वके उदयसे जो लोग मांस-सेवन करते हैं वे लोकमें निन्दा

योग्य, पापी और दुःखके भोगनेवाले होते हैं । धर्मरूपी कल्पवृक्षका मूल दया है, तब जिसमें दया नहीं उसके धर्म कहाँसे हो सकता है। बीजके विना फल नहीं होता । अन्यत्र भी ऐसा ही कहा गया है कि दया धर्मका मूल है । जिसने मांस खाकर वह मूल उखाड़ डाला फिर वह सुखरूप फल-फूल-पत्ते कहाँसे प्राप्त कर सकता है ? अच्छे लोगोंको जिसका नाम सुनकर ही बड़ा दुःख होता है तब उसका खानेवाला लम्पटी, पापी क्यों न दुखी होगा ? जैसे कौए, बगुले आदिका नदीमें नहाना शुद्धिके लिए नहीं हो सकता उसी तरह मांस खानेवालोंका नहाना-धोना, स्वच्छ वस्त्र पहरना आदि सब वृथा है। जिन महात्माओंके कुलमें स्वप्नमें भी मांसकी चर्चा नहीं वे ही वास्तवमें भव्य और बड़े पवित्र हैं । जिन्होंने इस मांस खानेको छोड़ दिया है उन्हें इस व्रतकी शुद्धताके लिए चमड़ेमें रक्खा हुआ पानी, घी, तैल, हींग आदि वस्तुयें भी न खानी चाहिए। अन्यत्र लिखा है--चमड़ेमें रक्खे हुए पानी, तैल, हींग, घी आदिका खाना मांसत्याग किये हुए मनुष्यको दोषका कारण है। क्योंकि चमड़ेके सम्बन्धसे घी-तैल-पानी वगैरहमें सदा जीव पैदा होते रहते है। जैसा कि कहा गया है-घी तैल-पानी आदिका सम्बन्ध पाकर उस चमड़ेमें जीव पैदा हो जाते हैं--जैसे सूर्यकान्तके सम्बन्धसे आग और पानीमें जीव पैदा हो जाना केवली जिनने कहा है। अन्यत्र लिखा है--चमड़का पानी पीनेवाले और घी-तैल

आदि खानेवालेको दर्शनशुद्धि नहीं हो सकती। शौच, स्नान वगैरहके लिए भी जब चमड़ेका पानी योग्य नहीं तब उस पानीको पीनेवाला जिनशासनमें व्रती कैसे हो सकता है। और भी कहा है—जो व्रती हैं उन्हें चमड़ेमें रक्खे हुए हींग-घी-तैल पानी आदि न खाना चाहिए। कारण उनमें सूक्ष्म जीव पैदा हो जाते हैं और उससे मांस खानेका ही दोष लगता है। इस प्रकार आचार्योंके उपदेशको मनमें धारण कर मांस-त्याग-व्रतीको चमड़ेमें रक्खे हुए घी-तैल आदि खाना ठीक नहीं।

मधु (शहद) मक्खियोंके वमनसे पैदा होता है, नाना जीवोंका घर है, पापका कारण है और निन्द्य है। वह अच्छे लोगोंके खाने योग्य नहीं। यह निन्द्य शहद देखनेमें खूनके सदृश है। जिन-वचन-रत लोगोंको उसका खाना ठीक नहीं। शहद खानेसे बड़ा ही घोर पाप होता है। इस कारण उसका खाना तो दूर रहे व्रतियोंको उसे शरीरपर लगाने वगैरहके काममें भी न लेना चाहिए। इस मधुत्याग-व्रतकी शुद्धिके अर्थ जिनप्रणीत तत्वके जाननेवालोंको गीले फूल भी न खाना चाहिए।

बड़ आदि पाँच वृक्षोंके फल जो पाँच उदुम्बर कहे जाते है, वे त्रस जीवोंके घर हैं और दुःखोंके मूल कारण हैं। उत्तम लोगोंको उनका खाना उचित नहीं है। जो फल भील आदि पापी लोगोंके खाने योग्य हैं, अच्छे पुरुषोंको तो उनका त्याग ही करदेना चाहिए। इसके सिवा पुण्यधनके धनी व्रती

लोगोंको चाहे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, पर अजान फल सदाके लिए छोड़ देना चाहिए। विद्वान् आशाधरजीने आठ मूलगुण इस प्रकार कहे हैं— मद्य, मांस, मधु, रात्रिभोजन और पाँच उदुम्बर फलका त्याग, पंच परमेष्ठीकी वन्दना, जीव-दया और जल छानकर काममें लाना, ये आठ मूलगुण हैं। इस प्रकार जिनशास्त्रानुसार आठ मूलगुणोंका स्वरूप कहा गया। सुख प्राप्तिके लिए श्रावकोंको इनका पालन करना चाहिए। ये आठ मूलगुण भव्य लोगोंका हित करनेवाले और संसारका दुःख नाश करनेवाले हैं। जो जन सम्यक्त्व सहित दृढ़ताके साथ सदा इनका पालन करते हैं वे त्रिभु-वनके बन्धु जिनधर्ममें दृढ़ होकर सुख-सम्पत्ति, प्रताप, विजय, यश और आनन्दको प्राप्त करते हैं।

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये गृह-स्थोंके बारह व्रत है। इस श्रावकचारित्रको मुनिजनोंने दुरा चारका नाश करनेवाला और श्रेष्ठ सुख-सम्पत्तिका कारण बतलाया है। स्थूल हिंसादिक-पाँच पापोंका त्याग पाँच अणुव्रत हैं। मन-वचन कायके संकल्पसे त्रस जीवोंकी हिंसा न करनेको पहला 'अहिंसा' नाम अणुव्रत कहते है। अहिंसा वह प्रशंसा योग्य है जिसमें नाम-स्थापनादिसे भी आटे वगैरहके बने जीव न मारे जायँ। देवताकी बलि, मंत्रसिद्धि तथा औषधि आदिके लिए भी चेतन या अचे-तन जीवकी हिंसा करना हितार्थियोंको उचित नहीं। जिन-

प्रणीत तत्वके समझनेवाले भव्य लोगोंको मन-वचन-काय पूर्वक सदा ही त्रस जीवोंकी रक्षा करनी चाहिए। जिनभगवानने पवित्र श्रावक-व्रतियोंके यह 'पक्ष' बतलाया कि वे संकल्पी-हिंसा कभी न करें। मारना, बाँधना, छेदना, ज्यादा बोझा लादना और खाने-पीनेको न देना ये पाँच अहिंसा-व्रतके दोष हैं। अहिंसाव्रतीको इन्हें छोड़ना चाहिए। इन दोषोंसे रहित त्रस जीवोंकी जो लोग दया करते हैं-मन वचन-कायसे किसी जीवको कष्ट नहीं देते हैं वे श्रेष्ठ व्रती श्रावक है। जो श्रावक इस प्रकार नाना भेद सहित दया पालते हैं और सदा जिनवचनमें सावधान रहते हैं वे इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदिकी सुख-सम्पदा, स्त्री-पुत्र, धन-दौलत, रूप-सुन्दरता, भोग-विलासके साधन और ऊँच कुल प्राप्त करते हैं और अन्तमें रत्नत्रयके प्रभावसे त्रिलोकपूज्य केवल-ज्ञानी होकर जन्म-जरा-मरण रहित अनन्त, अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मीका सुख भोगनेवाले होते है। और जो मूर्ख त्रस जीवोंकी हिंसा करते हैं वे फिर उसके पापसे नाना प्रकारके निर्धनता, रोगीपना आदि दुःखोंको भोगकर अन्तमें कुगतिमें जाते हैं। वहाँ भी वे छेदना, भेदना और यंत्रोंमें दबाकर मारना, आदि घोरसे घोर दुःख सहते हैं। इस तरह वे अनन्त कालतक संसारमें रुलते हुए दुःखोंको उठाते है। इस कारण हे भव्यपुरुषो, जिनशास्त्रानुसार हिंसाका त्यागकर श्रेष्ठ सम्पत्तिके भोगनेवाले हो। जिनभगवानने

जीवदया सब सुखोंकी कारण और संसारके दुःखोंकी नाश करनेवाली कही है। जो लोग उसे मन-वचन-कायसे पालते है वे स्वर्गादिकी सुख-सम्पदा लाभ कर अन्तमें मुक्ति स्त्रीका सुन्दर, अतुल और शुद्ध सुख प्राप्त करते है।

स्थूल-झूठ और वह सत्य जिससे जीवोंको कष्ट पहुँचे, न स्वयं बोलना चाहिए और न दूसरोंसे बुलवाना चाहिए। और न लाभ, डर, द्वेष आदिके वश होकर कभी झूठ बोलना उचित है। यह 'स्थूल-असत्य-त्याग' नाम दूसरा अणुव्रत है। इस व्रतके व्रतीको इतना और ध्यानमें रखना चाहिए कि वह मर्मभेदी, कानोंको दुःख देनेवाले और दूसरेको अच्छे न लगनेवाले वचन भी न बोले। किन्तु दूसरोंके हितरूप, सुन्दर, परस्पर विरोधरहित, मन और हृदयको प्यारे लगनेवाले और बहुत परिमित--थोड़े वचन बोले। प्रिय वचन एक ऐसी मोहिनी है कि उससे क्रूर पशु भी सन्तुष्ट हो जाते हैं। जो सबको प्यारे सत्य वचन बोला करते है, उनकी कीर्ति त्रिलोकमें फैल जाती है। झूठा उपदेश करना, किसीकी एकान्तकी बातोंको प्रगट कर देना, चुगली करना, जाली दस्तावेज बनाना और किसीकी धरोहर पचा जाना, ये पाँच असत्य-त्याग-व्रतके दोष--अतिचार हैं। जिन-वचन-रत सत्यव्रतीको इनका भी त्याग करना चाहिए। सत्य बोलनेसे निर्मल यश, लक्ष्मी, विद्या, प्रसिद्धि, लोक-मान्यता आदि

अनेक श्रेष्ठ गुण प्राप्त होते हैं। इस कारण असत्य छोड़कर सत्य ही बोलना चाहिए।

भूले हुए, रास्तेमें पड़े हुए और जंगल वगैरहमें गाड़े हुए दूसरेके धन आदिको बिना दिया न लेना उसे मुनिलोग 'स्थूल-स्तेय-त्याग' नाम तीसरा अणुव्रत कहते है। जो दूसरों-की धन-धान, सोना-चाँदी, मोती-माणिक आदि चीजोंको नहीं लेते हैं वे स्तेय-त्याग-व्रतके प्रभावसे परजन्ममें नाना तरह-की सम्पदाके स्वामी होते हैं। और जिन्होंने लोभके वश हो दूसरेका धन चुराया—उसने उसके प्राणोंको भी हर लिया। इससे बढ़कर और क्या पाप होगा। जो मूर्ख दूसरोंका धन चुराकर अपने घर ले जाता है—कहना चाहिए कि उसने अपनी भी जमा-पूँजी नष्ट करदी। इस चोरीसे वह निर्धन, दुखी, रोगी, कुरूप आदि होकर संसारमें अनन्त कालतक रुला करता है। इसलिए सन्तोष कर मन-वचन-कायसे सबको ' चोरी-त्याग-व्रत ' पालना चाहिए। ऐसा करनेसे उन्हें सुख प्राप्त होगा। चोरीका प्रयत्न करना, चोरीका माल लेना राजाज्ञाका उल्लंघन करना, तोलने या मापनेके बाट वगैरः ज्यादा-कम रखना और कम कीमतकी चीजमें अधिक कीमत-तकी और अधिक कीमतकीमें कम कीमतकी चीज मिलाना, ये पाँच स्तेयत्यागव्रतके अतिचार हैं। अपने व्रतकी रक्षाके लिए इन बातोंको छोड़ना चाहिए। इस प्रकार जिनभगवा-नने जो स्तेयव्रतका स्वरूप कहा, उसे जो निर्मल मनवाले

सत्पुरुष पालते हैं वे स्वर्गादिककी लक्ष्मीका सुख प्राप्तकर अन्तमें परम सुखमय मोक्ष प्राप्त करते हैं।

जो सत्पुरुष परस्त्रियोंसे सम्बन्ध न कर अपनी ही स्त्रीमें सन्तुष्ट रहते है उनके 'परस्त्री-त्याग' या 'स्वदार-सन्तोष' नाम चौथा अणुव्रत होता है। हाव-भाव-विलास युक्त परस्त्रियाँ अपने घरपर ही स्वयं क्यों न आई हों, शीलवान् पुरुषोंको उनसे संग न करना चाहिए। जिनने मन-वचन-कायसे परस्त्रीका त्याग कर दिया वे ही सच्चे धीर है, पंडित हैं, शूरवीर हैं और गुणोंके समुद्र हैं। सत्पुरुष परस्त्रीका रूप देखकर वरसासे नीचा मुँह किये हुए बूढ़े बैलके सदृश झटसे नीचा मुँह कर लेते हैं। अच्छे धर्मात्मा लोगोंके मनमें न्यायोपार्जित भोग ही जब नहीं रुचते तब न्याय रहित भोगोंकी तो बात ही क्या कहना। दूसरेके लड़के-लड़कीका व्याह करवाना, शरीरके अवयवोंसे कुचेष्टायें—बुरे इशारे करना, कामस्थानको छोड़कर अन्य अंगोंसे काम-क्रीड़ा करना, विषय-भोगोंकी बड़ी तृष्णा रखना और व्यभिचारिणी स्त्रियोंके घरपर जाना-आना, ये पाँच ब्रह्मचर्य व्रतके दोष है। परस्त्री-त्यागव्रतीको इनका भी त्याग करना चाहिए। इस प्रकार जो सत्पुरुष परस्त्रीका मन-वचन-कायसे त्याग करते हैं वे परम-पद—मोक्ष प्राप्त करते है। और जो परस्त्री-लम्पटी है वह मूर्ख उसके पापसे फिर दुर्गतिमें जाता है। इस कारण परस्त्रीका त्याग तो दूरहीसे कर देना चाहिए।

और जो स्त्रियाँ है उन्हें चाहिए कि वे कामदेव-सदृश सुन्दर मनुष्यको भी देखकर उसे अपने भाई या पिताके समान समझें । जिनभगवान्‌के वचनामृतका पानकर जो पवित्र शीलके धारक होते हैं वे सर्व श्रेष्ठ सम्पदा प्राप्त करते हैं और चन्द्रमाके समान निर्मल उनकी कीर्ति सब जगतमें फैल जाती है ।

धन-धान, सोना-चाँदी, दासी-दास आदि दस प्रकार परिग्रहकी संख्याका प्रमाण करना—मैं इतना धन या इतना सोना-चाँदी आदि रखकर बाकीका त्याग करता हूँ । यह पाँचवाँ ' परिग्रह परिमाण ' नाम अणुव्रत है । क्योंकि बिना ऐसी प्रतिज्ञा किये सैकड़ों नदियोंसे न तृप्त होनेवाले समुद्रकी तरह मनुष्यको कभी सन्तोष नहीं होता । यह जानकर बुद्धिमानोंको परिग्रहका परिमाण करना ही चाहिए । ऐसा करनेसे वे जो सन्तोष लाभ करेंगे उससे उन्हें दोनों लोकमें सुख मिलेगा । पशुओंकी शक्तिका विचार न कर लोभवश उन्हें अधिक चलाना, बिना जरूरतकी चीजोंका संग्रह करना, दूसरेके पास अधिक परिग्रह देखकर आश्चर्य करना, अधिक लोभ करना और शक्तिसे ज्यादा पशुओंपर बोझा लादना, ये पाँच परिग्रह-परिमाणव्रतके अतिचार हैं । इस व्रतीको इनका त्याग करना चाहिए । जो बुद्धिमान् श्रावक इस प्रकार पाँच अणुव्रतोंको प्रमाद—आलस छोड़कर प्रेमसे पालते है वे संसारमें श्रेष्ठसे श्रेष्ठ सम्पदा प्राप्तकर अन्तमें बड़े भारी संसार-

समुद्रको तैरकर मोक्ष जाते हैं। इस प्रकार पाँच अणुव्रतोंका स्वरूप कहा गया।

कुछ आचार्योंके मतसे श्रावकोंके लिए 'रात्रि-भोजन-त्याग' नाम एक और छठा अणुव्रत भी है। रातको भोजन करनेसे छोटे बड़े अनेक जीव खानेमें आ जाते हैं। इस कारण रातमें भोजन करना महापापका कारण है और उससे मांसत्यागव्रतकी रक्षा भी नहीं हो सकती। इसलिए वह त्यागने योग्य है। रातमें सूरजके दर्शन नहीं होते, इस कारण उस समय स्नान करना मना किया गया। मुग्ध— असमझ पक्षीगण, जो एक एक अन्नका दाना चुगा करते हैं, रातमें नहीं खाते तब धर्मात्मा, निर्मल मनवाले जनोंको अन्य नीच जनोंकी तरह रातमें खाना उचित है क्या? रातमें भोजन करते समय यदि मक्खी खानेमें आजाय तो उल्टी हो जाती है, गलेको कष्ट पहुँचता है और यदि जूँ कहीं खानेमें आगई तो जलोदर हो जाता है। सुना जाता है कि पहले किसी ब्राह्मणने रातमें भोजन करते समय किसी शाकके धोखेमें एक मेंडकको मुँहमें डाल लिया था। तब छोटे छोटे जीवोंकी तो बात ही क्या है। इस कारण जिनप्रणीत व्रतमें प्रीति रखनेवालोंको तो रातका भोजन मन-वचन-कायसे छोड़ ही देना चाहिए। उन्हें इधर तो भोजन करना चाहिए सवेरे दो घड़ी दिन चढ़े बाद और उधर शामको दो घड़ी दिन बच रहे उसके पहले। यदि कोई चाहे तो

रातको पानी-दवा-ताम्बूल— पान-सुपारी खा सकता है, पर फल वगैरह खाना योग्य नहीं। जो धर्मात्मा रातमें चारों प्रकारके आहारका त्याग कर देते हैं उन्हें वर्षभरमें छह महीने-के उपवासका फल होता है। जो लोग रात्रिभोजनका त्याग किये हुए हैं उन्हें दिनमें भी ऐसी जगह भोजन न करना चाहिए जहाँपर अन्धेरा हो। इत्यादि बातोंपर विचार कर जो रात्रिभोजनका त्याग करते हैं वे अपने कुलरूप कमलको प्रफुल्ल करनेको सूरज-सदृश हैं। रात्रिभोजनके छोड़नेसे रूप-सुन्दरता, सुख-सम्पदा, निर्मल कीर्ति, कान्ति, शान्ति, निरोगता, पुत्र-स्त्री, धन-दौलत आदि सब बातोंका मनचाहा सुख प्राप्त होता है। और जो लोग रातमें भोजन करते हैं वे काणें, बहरे, गूँगे, दुखी, दरिद्री, लूले, लँगड़े आदि होकर नाना दुःख भोगते है। यह जानकर स्वर्ग-मोक्षके सुखकी प्राप्तिके लिए रात्रिभोजनका त्याग करना ही उचित है। इस प्रकार जिनप्रणीत धर्मका सार समझकर जिसके द्वारा उदार परम पदकी प्राप्ति हो सकती है वह सैकड़ों कुगतियोंका रोकनेवाला, और पुण्यका कारण रात्रि-भोजनका त्याग पवित्र हृदयवाले जनोंको करना चाहिए।

सिवा इसके श्रावकोंको ज्ञान-विनय और सन्तोषके लिए भोजनादि करते समय 'मौनव्रत' धारण करना चाहिए। यह मौनव्रत मल-मूत्र करते समय और स्नान, पूजन, भोजन, स्तवन तथा सुरतिके समय रखना चाहिए। जो कुछ भी

वाक्य--वचन बोले जाते हैं वे सब ही ज्ञानके प्रकाशक हैं, इस कारण ज्ञानका सदा विनय हो, इस अभिप्रायसे उक्त सात जगह पवित्र मौनव्रत रखना कहा गया। इस प्रकार ऋषियों द्वारा कहे गये मौनव्रतका जो पालन करते हैं वे बड़े ज्ञानी होते हैं। सरस्वतीकी उनपर कृपा होती है। वे उस कृपा और मौनव्रतकी शुद्धिसे दिव्य स्वर, सुन्दरता और सौभाग्य प्राप्त करते हैं। निर्मल जलके सम्बन्धसे जैसे कमल होते हैं उसी प्रकार 'मौनव्रत' द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। इस मौनव्रतीको भोजनके समय चपलता, हुंकार, हँसी, लिखना, इशारा आदि बातें न करनी चाहिए। इतना और विचार रखना उचित है कि अग्निकी तरह सर्वभक्षीपनेको छोड़कर उसे बड़ी शान्तिके साथ भोजन करना चाहिए।

श्रावकोंको भोजन करते समय मूलगुणकी शुद्धिके लिए सात प्रकार अन्तराय टालने चाहिए। वे अन्तराय ये हैं--मांस, रक्त, गीला चमड़ा, हड्डी, पीव और मृत-शरीर। अर्थात् भोजन करते हुए ये वस्तुयें यदि देखनेमें आ जाय तो उसी समय भोजन छोड़ देना चाहिए। इसके सिवा त्याग किया भोजन किसीको खाते हुए देखकर, या चांडाल आदि नीच जातिके लोग देख पड़ें--उनके शब्द सुननेमें आ जायँ अथवा मल-मूत्र आदि दीख जायँ तो भी भोजन छोड़ देना चाहिए।

श्रावकोंको जल छानकर काममें लाना चाहिए। मुनिजनोंने इसे पुण्यका कारण कहा है। जल छाननेसे जीवोंकी

दया पलती है। जल छाननेका कपड़ा अच्छा गाढ़ा होना चाहिए। छन्नेका प्रमाण शास्त्रोंमें बतलाया है कि वह छत्तीस अंगुल लम्बा और चौवीस अंगुल चौड़ा हो। इस कपड़ेको दुहरा करके पानी छानना चाहिए। जिनधर्ममें दृढ़ दयावान् पुरुषोंको जल छाननेमें कभी प्रमाद—आलस करना ठीक नहीं है। जो लोग पानी छानकर पीते हैं वे ही भव्य हैं और बुद्धिमान् हैं। नहीं तो पशुओंके समान बुद्धि-हीन उन्हें भी समझना चाहिए। छाना हुआ पानी एक मुहूर्त्त तक, प्रासुक दो पहर तक और खूब गरम किया पानी आठ पहर तक काममें लिया जा सकता है। इसके बाद उसमें फिर जीव उत्पन्न हो जाते हैं। पानी कपूर, इलायची, लौंग, आदि सुगन्धित या कसेली वस्तुओंसे प्रासुक किया जाता है। जैनधर्म तथा नीतिके मार्गमें जलका छानना धर्म बतलाया गया है और यह जगभरमें प्रसिद्ध है कि देखकर पाँव रखना चाहिए, छानकर पानी पीना चाहिए, सत्य बोलना चाहिए और पवित्र मनसे आचरण करना चाहिए। जल छानते समय इतना ध्यान और रखना चाहिए कि जिस स्थान—कुए, बावड़ी, नदी, तालाव आदिसे जल लाया गया है, और छानकर जो बिनछनीका बाकी जल बचा है उसे पीछा उसी स्थानपर बड़ी सावधानीके साथ पहुँचा देना चाहिए। जल छाननेमें जो लोग सदा इतना यत्न करते हैं वे सुखी होते हैं और धर्म-प्रेमी है।

श्रावकोंको कन्दमूल, अचार, मक्खन, फूलका शाक, बेल-फल तूँबी, काँजी, अदरख आदि वस्तुयें न खानी चाहिए। कारण ये अनन्तकायिक है। इसके सिवा तुच्छफल भी न खाना चाहिए। उससे महापाप होता है। जिन्हें जिनवाणीपर विश्वास है उन दयालु पुरुषोंको कन्दमूल तो कभी न खाना चाहिए। अचारमें त्रस जीव बड़े जल्दी उत्पन्न हो जाते हैं। इसके खानेपर, अधिक क्या कहें—उसका मांस-त्यागव्रत नष्ट ही हो जाता है। काँजीमें एकेन्द्रिय आदि अनन्त जीव पैदा हो जाते है। इस कारण मांसव्रतकी रक्षा करनेवालेको उसका खाना उचित नहीं। जैसा कि लिखा है—काँजीमें चार पहर बाद एकेन्द्रिय, छह पहर बाद दो इन्द्रिय, आठ पहर बाद तीन इन्द्रिय, दस पहर बाद चार इन्द्रिय और बारह पहर बाद पाँच इन्द्रिय जीव पैदा हो जाते है।

इसी तरह मक्खनमें भी दो मुहूर्त्त बाद एकेन्द्रिय आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इस कारण वह भी खाने योग्य नहीं है। गाय, भैंस आदि जिस दिन जने उसके पन्द्रह दिन बाद उनका दूध खाना उचित है। छाँछसे जमाये हुए दही और उसकी छाँछ दो दिनकी खाई जा सकती है, इसके बाद वह खाने योग्य नहीं रहती। इस प्रकार कन्दमूला-दि जो जो वस्तुयें जिनागममें त्यागने योग्य बतलाई हैं—उन सबका उत्तम श्रावकोंको त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार

आठ मूलगुण और पाँच अणुव्रतका वर्णन किया गया। अब गुणव्रतका वर्णन किया जाता है।

श्रुतज्ञानी आचार्योंने श्रावकोंके दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत ऐसे तीन गुणव्रत कहे हैं। मृत्युपर्यन्त सब दिशाओंकी मर्यादा कर उसके बाहर न जानेको पहला 'दिग्व्रत' नाम गुणव्रत कहते हैं। वह मर्यादा नदी, समुद्र, पर्वत, देश, गाँव, योजन आदिके द्वारा की जाती है। अर्थात् मैं इस दिशामें अमुक नदीतक और इस दिशामें अमुक दूर तक जाऊँगा–उसके आगे जानेकी मेरे प्रतिज्ञा है। इसी तरह दसों दिशाओंकी मर्यादा दिग्व्रतमें की जाती है। ऊपर, नीचे और तिर्यग्दिशामें की हुई मर्यादाको तोड़कर उसके बाहर जाना, मर्यादाकी सीमाको बढ़ालेना और मर्यादाको भूल जाना ये दिग्व्रतके पाँच अतिचार हैं। दिग्व्रतीको इन्हें छोड़ना चाहिए।

ऊपर जो दिग्व्रतकी मर्यादा की गई है उसकी सीमाको अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिदिन और कम करना वह 'देशव्रत' नाम दूसरा गुणव्रत है। यह मर्यादा भी घर, गाँव, नदी, योजन आदि द्वारा की जाती है। ऐसा परमागमरूपी नेत्रके धारक मुनिजनोंका कहना है। मर्यादाके बाहर किसीको भेजना, पुकारना, बुलाना, अपना शरीर वगैरह दिखलाकर इशारा करना और पत्थर वगैरह फैंकना ये पाँच देशव्रतके अतीचार हैं।

'अनर्थदण्ड' नाम तीसरे गुणव्रतके पाँच भेद हैं। पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या। पशुओंको जिससे क्लेश पहुँचे ऐसा और वाणिज्य-व्यापारके आरंभका उपदेश देना 'पापोपदेश' नाम पहला 'अनर्थदण्डव्रत' है। तलवार, बन्दूक, छुरी, कटार, रस्सी, साँकल, मूसला, आग आदि हिंसाकी कारण वस्तुओंका दान देना 'हिंसादान' नाम दूसरा दुःखका कारण अनर्थदण्ड है। द्वेषभावसे शत्रुओंके वध-बन्धन-मारने तथा परस्त्री आदिके सम्बन्धमें हर समय बुरा चिंतन करते रहनेको 'अपध्यान' नाम तीसरा अनर्थदण्ड कहते है। राग, द्वेष, आरंभ, हिंसा, मिथ्यात्व आदिके बढ़ानेवाले शास्त्रोंका सुनना 'दुःश्रुति' नाम अनर्थदण्ड है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति इन पाँच स्थावरोंकी वृथा हिंसा करना, विना किसी मतलबके इधर उधर भटकते फिरना, अथवा बिल्ली, कुत्ता, तोता, बन्दर, कबूतर मोर आदि जीवोंको घरमें पालना ये सब 'प्रमादचर्या' नाम पाँचवाँ पापका कारण अनर्थदण्ड कहा गया है।

काम-विकार पैदा करनेवाले बुरे—अश्लील वचन बोलना, ऐसी ही शरीरकी बुरी चेष्टा करना, विना प्रयोजनके बहुत बोलना, खूब सिंगार वगैरह करना और विना विचारे कोई काम करना ये पाँच अनर्थदण्डव्रतके दोष या अतीचार हैं।

श्रावकोंके चार शिक्षाव्रत है। सामायिक, निर्जराका कारण

प्रोषधोपवास, भोगोपभोग-परिमाण और अतिथि-संविभाग। अब इनका विस्तृत वर्णन किया जाता है।

स्वीकृत कालतक सब प्रकारके सावद्य-आरंभका त्याग करनेको धर्मज्ञ विद्वानोंने पवित्र 'सामायिकव्रत' कहा है। इसका स्पष्टार्थ यह है कि जीव मात्रमें समता भाव, संयम-इन्द्रिजय, शुद्ध भावना और आर्त्त-रौद्र भावका त्याग इतनी बातें सामायिकमें होनी चाहिए। जिनमन्दिर, घर, जंगल आदि किसी एकान्त स्थानमें स्वस्थता-निराकुलताके साथ पद्मासन बैठकर सामायिक करनी चाहिए। सामायिकमें बड़े वैराग्य भावोंसे पाँच परम गुरु—अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु-का भक्तिपूर्वक तीनों काल ध्यान करना चाहिए। जैसा कि अन्यत्र कहा है-जिनवाणी, जिनधर्म, जिनप्रतिमा, पाँच परमेष्ठी और जिनभवन इनकी नित्य त्रिकाल वन्दना करना वह सामायिक है। सामायिक करनेवालेको यह चिंतन करते रहना चाहिए कि-मैं एक हूँ, कर्मोंसे घिरा हुआ होकर भी शुद्ध-बुद्ध हूँ। संसारमें न कोई मेरा है और न मै ही किसीका हूँ। इसके सिवा चिन्ता, आरंभ, गर्व, राग, द्वेष, क्रोध आदिके विचारोंका त्याग कर देना चाहिए। सामायिक करते हुए यदि जाड़ा, घाम आदिका कष्ट होने लगे, डाँस-मच्छर उपद्रव करें तो इन सब कष्टोंको शान्तिके साथ सह लेना चाहिए। जिनवाणीके ज्ञानका यही फल होना चाहिए कि उस समय धीरता न छूटे। सामायिकमें

बैठते समय चोटी बाँध लेनी चाहिए; मुट्ठी बंदकर रखना चाहिए । पद्मासन माँड़कर हाथपर हाथ धरकर बैठना चाहिए और वस्त्र वगैरहको अच्छी तरह चारों ओरसे बाँधकर-समेट कर बैठना चाहिए । यह सामायिक ऊपर कहे गये पाँच व्रतोंको पूर्णतापर पहुँचानेवाला, धर्मका कारण और दुःखका नाश करनेवाला है । इस कारण सामायिक तो नित्य ही करना चाहिए । पूर्वाचार्योंके कहे अनुसार जो भव्यजन त्रिशुद्धि पूर्वक इस भव-भ्रमणको मिटानेवाले सामायिकव्रतको करते हैं वे जिन-भक्ति-रत सत्पुरुष स्वर्ग सुख भोगकर अन्तमें मोक्ष-सुखके पात्र होते हैं । मन-वचन-कायके योगों द्वारा बुरा चिंतन करना, अनादर करना और सामायिक करना भूल जाना ये पाँच सामायिक व्रतके अतीचार हैं ।

श्रावकोंको अष्टमी और चतुर्दशीके दिन प्रोषधव्रत करना चाहिए । यह कर्म-निर्जराका कारण है । प्रोषधके दिन अन्न-पान-खाद्य-लेह्य इन चार प्रकारके आहारका त्याग करना चाहिए । उपवासके पहले दिन एक वार भोजन कर उपवास करना और पारणाके दिन भी एकवार भोजन करना यह उत्कृष्ट 'प्रोषधव्रत' है । इस दिन खाँड़ना, पीसना, चूल्हा जलाना, पानी भरना और झाड़ू लगाना ये पाँच पाप न करना चाहिए । इसके सिवा नहाना-धोना, तमाखू सूँघना, आँखोंमें काजल या सुरमा लगाना, शरीर सिंगारना आदि करना भी ठीक नहीं है । किन्तु देव-गुरु-शास्त्रकी सेवा-पूजा,

स्वाध्याय, ध्यान आदिमें वह दिन शान्तिसे बिताना चाहिए। इस दिन स्वयं कर्णाञ्जलि द्वारा धर्मामृत पीना चाहिए और अन्य भव्य-जनको पिलाना चाहिए। इस प्रकार जो भव्य प्रोषधव्रत करता है उसके कर्मोंकी निर्जरा होना निश्चित है। किसी चीजको बिना देखे-भालकर उठाना और रखना, इसीतरह बिछौना बिना देख उठाना और रखना, प्रोषधव्रतमें अनादर करना और उसे भूल जाना ये पाँच प्रोषधव्रतके दोष हैं।

भोगोपभोग परिमाण-व्रतमें दो प्रकार नियम किया जाता है। एक तो यमरूप और दूसरा नियमरूप। यम जीवन पर्यन्त होता है। और नियम कालकी मर्यादाको लेकर किया जाता है। 'भोग' वह है जो एकवार ही भोगनेमें आवे, जैसे भोजन आदि खाने-पीनेकी वस्तुयें। और जो वार वार भोगनेमें आवे वह 'उपभोग' है। वस्त्र, भूषण, वाहन, शय्या आदि। इन भोगोपभोगवस्तुओंकी जो संख्याकी जाती है वह ' भोगोपभोगपरिमाण, नाम तीसरा शिक्षाव्रत है। भोगोपभोगकी वस्तुओंमें अत्यन्त आदर करना, बार बार उन्हें याद करना, उनमें अत्यन्त लोलुप होना, भोगी हुई बातोंका अनुभव करना और अधिक तृष्णा रखना ये पाँच भोगोपभोग परिमाणव्रतके दोष है।

'संविभाग' नाम है त्यागका और त्याग शब्दका अर्थ है दान। वह दान अतिथि—सुपात्रको यथाविधि देना, उसे 'अतिथि-संविभाग' नाम चौथा शिक्षाव्रत कहते हैं। ज्ञानी मुनियोंने

उस पात्रके—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ये तीन भेद किये हैं। पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितिको निरन्तर पालनेवाले मुनि उत्तम-पात्र हैं। ये बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ महापात्र संसार-समुद्रसे पार उतारनेके लिए जहाज-समान स्वपर-तारक है। सम्यक्त्वसहित बारह व्रतोंको धारण करनेवाला श्रावक मध्यम-पात्र कहा गया है। और जो केवल सम्यक्त्वका धारक है वह जिनभक्ति-रत सम्यग्दृष्टि जघन्य-पात्र है। इन तीनों प्रकारके पात्रोंको यथाविधि नित्य चार प्रकारका दान दयालुओंको देना चाहिए। पूर्वाचार्योंने जो विधि, दाताके गुण और दानके भेद बतलाये हैं उनका थोड़ेमें यहाँ भी वर्णन किया जाता है। पुण्यसे महापात्र मुनि यदि अपने घर आहारके लिए आ-जायँ तो ये नौ विधि करना चाहिए। आदरसे उन्हें घरमें ले जाना, ऊँचे स्थानपर बैठाना, उनके पाँव पखारना और पूजा करना नमस्कार करना और मन-वचन-काय तथा भोजनकी शुद्धि रखना। श्रद्धा, भक्ति, निर्लोभता, दया, शक्ति, क्षमा और विज्ञान ये सात दाताके गुण हैं। पहले यह भावना हो कि 'पात्र मेरे घरपर आवे,' और जब मुनि सामने आ-जायँ तब प्राप्त निधिकी तरह खुश होकर उनके विषयमें श्रद्धा करे। मुनिका जबतक आहार समाप्त न हो तबतक बड़े धर्मप्रेमसे उनकी सेवा करता हुआ उनके पास ही खड़ा रहे, यह दाताका दूसरा 'भक्ति' नाम गुण है। इस मुनिदानके फलसे मुझे

राज्य-वैभव या और सुख-सम्पत्ति प्राप्त हो—इस प्रकारकी इच्छाका न रहना दाताका तीसरा 'निर्लोभता' गुण है। किसी कार्यके लिए घरमें जाना पड़े तो जीव देखकर चलना चाहिए— यह 'दया' नामका चौथा गुण है। यदि आहारमें कुछ अधिक भी खर्च हो जाय तो दुखी न हो— समुद्र-समान गंभीर दाताका यह 'शक्ति' नाम पाँचवाँ गुण है। घरमें बाल-बच्चे, स्त्री आदिसे कोई अपराध बन पड़े तो उन-पर गुस्सा न हो—यह 'क्षमा' छटा गुण है। पात्र, अपात्र-की विशेषताको जानता हो, गुण दोषोंका विचार करने-वाला हो और देने न देने योग्य वस्तुका जानकार हो—दाताका यह सातवाँ 'ज्ञान' नाम गुण है। जैसा कि, दाताके ज्ञान गुणके सम्बन्धमें अन्यत्र लिखा है— "मुनिको ऐसा आहार देना योग्य नहीं—जिसका वर्ण औरका और हो गया हो, बे-स्वाद हो, विंधा हो, तकलीफ पहुँचानेवाला हो, बहुत पक गया हो, रोगका कारण हो, दूसरेका झूठा हो, नीच लोगोंके योग्य हो, किसी दूसरेके अर्थ बनाया गया हो, निन्द्य हो, दुर्जनोंका छुआ हो, यक्ष देवी-देवताका लाया हुआ हो, दूसरे गाँवसे आया हुआ हो, मंत्र-प्रयोगसे मँगाया गया हो, भेंटमें आया हुआ हो, बजा-रसे खरीदा गया हो, प्रकृतिके विरुद्ध हो और बे-समयका या बिना ऋतुका हो।"

जिनागममें—आहार, औषध, शास्त्र और अभय ये चार प्रकारके दान कहे गये हैं। जो श्रावक नौ-भक्ति और सात

गुण युक्त होकर शक्तिपूर्वक सुपात्रके लिए अन्नदान करता है वह जन्म जन्ममें पुण्यका पात्र और सुखी होता है । कुगतिमें वह कभी नहीं जाता । सुपात्रदानके फलसे—धन-दौलत, रूप-सौभाग्य प्राप्त होता है । कीर्ति सारे लोकमें फैल जाती है । रोग, शोक आदि कोई कष्ट नहीं होता । ऐसे लोग बड़े कुलमें पैदा होते हैं, बड़े पराक्रमी होते हैं और राज्य-वैभव प्राप्त करते है । स्वर्गादिकका सुख प्राप्त करनेवाले अन्नदानीके सम्बन्धमें क्या कहें, वह तो ऐसा भाग्यशाली है जो स्वयं तीर्थंकर भी उसके घरपर आते हैं ।

जो नाना प्रकारके रोगोंका कष्ट उठा रहे हैं, ऐसे दुखी जीवोंको जीवदान-सदृश श्रेष्ठ औषधिदान देना चाहिए । जिसने तीन प्रकारके पात्रोंको श्रेष्ठ औषधिदान दिया वह दाता जन्म जन्ममें फिर निरोग होता है । रोगसे शरीर नष्ट होता है, शरीर नष्ट होनेपर तप नहीं बन सकता, और जिनप्रणीत तप किये बिना मोक्षका सुख प्राप्त नहीं होता । इस कारण भव्यजनोंको हर प्रयत्न द्वारा धर्मप्रेमसे साधर्मियोंको औषधिदान देना उचित है ।

तीसरा शास्त्रदान है । श्रावकोंको चाहिए कि वे सुपात्रोंको त्रिलोक-पूजित जिनप्रणीत शास्त्रोंका दान दें । यह दान बड़ा सुखका कारण है । इस दानके फलसे दाता परजन्ममें सब शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करता है । उसकी कीर्ति त्रिलोकमें फैल जाती है । 'ज्ञान' यह मनुष्योंका उत्कृष्ट नेत्र है, तब जिसने

सुपात्रको यह दान दिया उसके पुण्यका क्या कहना । इस कारण जिनप्रणीत शास्त्र लिखकर या लिखवाकर भक्तिसहित पात्रको भेंट करना चाहिए। यह दान स्वर्ग-मोक्षके सुखका कारण है । अपनेको श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त हो, इसलिए श्रावकोंको संसार-समुद्रसे पार पहुँचानेवाला यह शास्त्रदान देना ही चाहिए ।

जो भयसे डरते हैं, और इसी कारण दुखी हैं उनके लिए श्रावकोंको अभयदान देना चाहिए । यह दान बड़ा सुखका कारण है । जिसने जीवोंको अभयदान देकर निर्भय किया कहना चाहिए कि उसने उसके प्राणोंको बचा लिया । इस दानसे दाता त्रिभुवनमें निर्भय, शूरवीर, धीर, गंभीर, निर्मल-हृदय और बुद्धिमान् होता है । बाकीके जितने भी दान दिये जाते हैं, देखा जाय तो वे सब दयाके लिए हैं । तब जिसने अभयदान दिया उसने तो साक्षात् ही दया की। यह जान-कर सुपात्रके लिए अभयदान देना चाहिए । सिवा इनके अन्य जनके लिए भी यथायोग्य अभयदान देना योग्य है। इस प्रकार त्रिविध पात्रोंको जिसने चारों प्रकारका दान दिया कहना चाहिए कि उसने धर्म-वृक्षको सींच दिया। पात्र-दानके सम्बन्धमें लिखा है–जो आकाशमें नक्षत्रोंकी संख्या और समुद्रमें कितने चुल्लु पानी है–यह बतला सकता है और जो जीवोंके भवोंकी संख्या भी कह सकता है, पर वह यह बतलावे कि सत्पात्रके लिए जो धन व्यय किया गया उसके पुण्यका परिमाण कितना है ?

जिसने जैनधर्मका आश्रय ले रक्खा हो, उसका भी पोषण श्रावकोंको करना चाहिए। और जो जिनधर्मसे सर्वथा ही विपरीत हो तो उसे दान देना विवेकियोंको उचित नहीं। अन्यत्र लिखा है-मिथ्यादृष्टियोंको दान देनेवाले दाताने मिथ्यात्व ही बढ़ाया। क्योंकि साँपको पिलाया हुआ दूध विष ही बढ़ाता है। सुपात्र और अपात्रके दानमें बड़ा ही भेद है। सुपात्र स्व-परको तारनेवाले जहाजके समान है और अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि कुपात्र स्व-परको डुबानेवाले पत्थरके समान है। अन्य शास्त्रमें पात्रापात्रोंका लक्षण इस प्रकार बतलाया है–'अनगार–मुनि उत्कृष्ट-पात्र हैं, अणुव्रती मध्यम-पात्र है, अव्रती सम्यग्दृष्टि जघन्य-पात्र है और जिसके न व्रत है और न सम्यक्त्व है वह अपात्र है। निर्मल पानी जैसे वृक्षोंके भेदसे नाना रूपमें परिणत होता है उसी तरह पात्र-अपात्रको दिये आहारका परिणमन होता है। उर्वरा पृथ्वीमें बोये हुए बीजकी तरह पात्रदान बहुत फलका देनेवाला होता है। वही बीज उर्वरा पृथ्वीमें न बोया जाकर यदि खारयुक्त जमीनमें बो-दिया जाय तो वृथा जाता है। ठीक इसी तरह कुपात्रको दिया दान दाताको कुछ लाभ नहीं पहुचा सकता। इत्यादि भेदोंका जाननेवाला जो दाता नित्य सुपात्रको भक्तिसहित दान देता है वही बुद्धिमान् दाता है। इस प्रकार सुपात्र-दानके फलसे भव्य जन मन-चाही धन-दौलतें, सोना-चाँदी, मणि-माणिक,

स्वर्गादिका सुख, उच्च कुल, परिजन-स्त्री, पुत्र आदि प्राप्त कर अन्तमें मोक्ष जाते है। यह जानकर धर्मात्माओंको सुपात्रके लिए भक्तिपूर्वक चार प्रकारका दान निरन्तर देना चाहिए। ये चारों ही दान श्रेष्ठ सुखोंके कारण हैं। दान योग्य वस्तुको सचित्त-हरे पत्तोंमें रख देना, उनसे ढक देना, दान करना भूल जाना, अनादर करना और किसीको दान करते देखकर मत्सर करना, ये पाँच 'अतिथिसंविभाग' नाम चौथे शिक्षाव्रतके दोष हैं। इस प्रकार जिनप्रणीत धर्म-कर्म-रत भव्य श्रावक अप्रमादी होकर खुश दिलसे अपनी श्रद्धा-भक्तिके अनुसार श्रेष्ठ पात्रोंको भोजन आदि चार प्रकारका उत्तम दान देकर दिव्य श्रीको प्राप्त करें।

जिनपूजा दोनों लोकमें सुख देनेवाली है। श्रावकोंको वह सदा करनी चाहिए। यदि अपनी शक्ति हो तो एक सुन्दर जिनभवन बनवाकर उसे धुजा वगैरहसे मंडित करना चाहिए। इसके बाद सोने-रत्न आदिकी पाप नाश करनेवाली श्रेष्ठ प्रतिमायें बनवाकर- उनकी विधिसहित बड़े ठाठ-बाटसे पञ्चकल्याण प्रतिष्ठा कर उन्हें मन्दिरमें विराजमान करना चाहिए। जो भव्य श्रावक पवित्र मनसे ऐसा करते हैं वे मोक्षरूपी उत्कृष्ट लक्ष्मीको प्राप्त करते हैं। इस विषयमें लिखा है कि "जो धर्मात्मा पुरुष भक्तिवश हो कुँदरुके पत्ते बराबर तो जिनभवन और जौके बराबर प्रतिमा बनवाते हैं उनके पुण्यका भी वर्णन करनेको सर-

स्वती समर्थ नहीं तब जो लोग जिनभवन और जिनप्रतिमा ये दोनों ही बनवाते हैं– उनके पुण्यका तो कहना ही क्या ? ”

यदि थोड़ेमें कहा जाय तो उन निकट-भव्य, जिन-भक्ति-रत लोगोंके लिए इन्द्र-चक्रवर्त्तीकी लक्ष्मी कुछ दुर्लभ नहीं है। लिखा है— “ एक ही जिनभक्ति दुर्गतिके रोकने, पुण्यके प्राप्त कराने और मुक्तिश्रीके देनेको समर्थ है। जो लोग जिन-प्रतिमाका पंचामृतसे अभिषेक करते हैं उन्हें मेरु पर्वतपर देवतागण स्नान कराते हैं और जो जल आदि आठ द्रव्योंसे जिनको सदा पूजते हैं वे देवतों द्वारा पूजे जाते है। जिनभगवान् इन्द्र, नागेन्द्र, विद्या-धर, चक्रवर्ती राजे-महाराजे आदि सभी महापुरुषों द्वारा सदा पूजे जाते है और त्रिभुवनका हित करनेवाले है, उन केवलज्ञानी जिनकी पूजा वगैरह भले ही करो, पर उससे केवली जिनको कुछ लाभ नहीं; किन्तु लाभ है तो वह पूजन करनेवाले भव्य श्रावकोंको है। इस कारण धर्मतत्वके जानकार जो सुखार्थी जन स्वर्ग-मोक्षके कारण जिनचरणोंकी भक्तिसे पूजा करते हैं वे सब जगमें पूज्य होकर फिर केवलज्ञानरूपी साम्राज्यके स्वामी बनते हैं।

इस प्रकार जिनपूजन समाप्त कर फिर उन्हें जिनस्तुति पढ़नी चाहिए। जिनस्तुति भी पापका नाश करनेवाली है। इसके बाद उन्हें मन-वचन-काय-की शुद्धिसे पाँच परमे-

ष्ठीका जप करना चाहिए। जप सब दुर्गतिका नाश करनेवाला और त्रिभुवनमें एक श्रेष्ठ वस्तु है। यह परमेष्ठि-वाचक पैंतीस अक्षरोंका नमस्कार-मंत्र सब दुःखोंका क्षय करनेवाला है। इस महामंत्रके प्रभावसे तिर्यंच भी स्वर्गको गये तब इसे अच्छी तरह जपनेवाले मनुष्योंका तो क्या कहना? एकीभाव स्तोत्रमें लिखा है—"भगवन्, जीवन्धर कुमारने मरते हुए कुत्तेको आपके नमस्काररूप महामंत्रका उपदेश किया था—वह मंत्र उसे सुनाया था। उसके प्रभावसे वह रात-दिन पाप करनेवाला कुत्ता भी स्वर्ग गया; तब प्रभो, जो इस नमस्कारमंत्रका मणिमालासे जाप करे, वह यदि इन्द्रके वैभवको प्राप्त हो तो उसमें क्या कोई सन्देह है?" इस मंत्रके सिवा गुरुके उपदेशसे अन्य सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक आदि परमेष्ठि-वाचक मंत्रोंका भी जाप करना चाहिए। जाप किन किन चीजोंसे करना चाहिए—इसके लिए एक जगह लिखा है—पालथी लगाकर फूल, उँगलीके पेरमें, कमलगट्टे या स्वर्ण,रत्न, मोती आदिकी माला द्वारा जाप करनी चाहिए। जाप करते समय इतना ध्यान रहना चाहिए कि माला हिले-डुले नहीं। जैसे ही जिनकी पूजा की जाती है उसी तरह श्रावकोंको सिद्ध भगवान्, जिनवाणी और गुरुकी भी पूजा करनी उचित है। इनकी पूजा भी दोनों लोकमें सुखकी देनेवाली है। इस पूजासे भव्यजन पूज्यतम होते हैं। सुखार्थी जनको पूज्य-पूजाका उल्लंघन करना ठीक नहीं।

भरतचक्रवर्त्ती आदि अनेक महा पुरुषोंने जिनपूजाका श्रेष्ठ-से श्रेष्ठ फल प्राप्त किया है, उसे जिनभगवान्‌के बिना और कौन वर्णन कर सकता है। पर पूजाके फलके उदाहरणमें मेंडक उल्लेख विशेष कर किया जाता है। जैसा कि समन्तभद्र स्वामीने रत्नकरंडमें लिखा है—"राजगृह नगरमें एक आनन्दसे मस्त हुए मेंडकने केवल एक फूलसे जिनचरणकी पूजाका श्रेष्ठ फल महात्मा लोगोंसे कहा था।" अर्थात् वह उस पूजाके फलसे स्वर्ग गया। इसकी कथा 'आराधनाकथा-कोश' 'पुण्याश्रव' आदि ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है। इसी तरह श्रावकको जिनागमप्रणीत सात क्षेत्रोंमें भी धनरूपी बीज बोना चाहिए। इससे भी सैकड़ों सुख प्राप्त होते हैं। लिखा है कि—"जो जिनभवन, जिनबिम्ब, जिनवाणी और चार संघ इन सात क्षेत्रोंमें अपने धनरूपी बीजको बोता है वह बड़ा पुण्यात्मा है।

इस प्रकार जिनभगवान् पुण्यके कारण, सुरासुर-पूजित और संसार-सागरसे पार करनेवाले हैं, उनकी जो भव्य श्रावक मन-वचन-कायसे पूजा करते हैं वे स्वर्गादिकका श्रेष्ठ सुख प्राप्तकर बाद कभी नाश न होनेवाला मोक्षका सुख भोगते हैं। तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन दोनोंको मिलाकर पंडित लोग श्रावकोंके 'शीलसप्तक' भी कहते है। पाँच अणुव्रत और शीलसप्तक इस प्रकार मुनिजनोंने गृहस्थोंके शुभ बारह व्रत कहे हैं। इनका जो लोग नित्य पालन करते हैं वे पहले इन्द्रादिककी सम्पदाका सुख भोगकर फिर मोक्ष चले जाते हैं।

इन बारह व्रतोंके सिवाय पूर्वाचार्योंने श्रावकोंके लिए ग्यारह प्रतिमायें और उपदेश की हैं। वे सब श्रेष्ठ सुखोंकी देनेवाली हैं। उनके नाम ये है, १–दर्शनप्रतिमा, २–व्रत प्रतिमा, ३–सामायिकप्रतिमा, ४–प्रोषधोपवासप्रतिमा, ५–सचित्तत्यागप्रतिमा, ६–रात्रिभोजनत्यागप्रतिमा, ७–ब्रह्मचर्यप्रतिमा, ८–आरंभत्यागप्रतिमा, ९–परिग्रहत्यागप्रतिमा, १०–अनुमतित्यागप्रतिमा और ११–उद्दिष्टत्यागप्रतिमा। इन ग्यारहों प्रतिमाओंका आगमानुसार संक्षेपमें स्वरूप लिखा जाता है। जूआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, शिकार करना, वेश्या सेवन, परस्त्री सेवन और चोरी करना–ये सात व्यसन हैं, इनका त्यागकर जिसने आठ मूलगुण ग्रहण कर लिये हैं, जो सदा जिनभक्तिमें रत और शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक है वह जिनधर्मप्रेमी दर्शनप्रतिमाधारी श्रावक कहा गया है।

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतोंको पालन करनेवाला व्रतप्रतिमाधारी श्रावक है

मन-वचन-कायकी शुद्धिपूर्वक जो त्रिकाल नियमपूर्वक सामायिक करता है वह सामायिक नाम तीसरी प्रतिमाका धारक है।

अष्टमी और चतुर्दशीको नियमसे प्रोषधोपवास करनेवाला प्रोषधोपवास नाम चौथी प्रतिमाधारी श्रावक है।

जो सचित्त फल, जल आदिको उपयोगमें नहीं लाता वह दयालु पाँचवीं सचित्तत्यागप्रतिमाधारी कहा गया है।

अन्न, पान, स्वाद्य और लेह्य इन चार प्रकारके आहारोंको जो रातमें नहीं खाता वह रात्रिभोजत्याग नाम छटी प्रतिमाधारी श्रावक है।

विषयोंसे विरक्त होकर जो मन-वचन-कायसे ब्रह्मचर्यको पालता है–वह सातवीं ब्रह्मचर्य नाम प्रतिमाका धारक श्रावक कहा गया है।

नौकरी-चाकरी, खेती, वाणिज्य-व्यापारादि सम्बन्धि सब प्रकारका आरंभ त्याग कर देता है–वह जीवदया-प्रतिपालक आठवीं आरंभत्यागप्रतिमाका धारक है।

दस प्रकार बाह्य * और चौदह प्रकार अभ्यन्तर * इस प्रकार जो चौवीस तरहके परिग्रहका त्यागकर देता है–वह महासन्तोषी नौवीं परिग्रहत्यागप्रतिमाधारी श्रावक है। इनमें बाह्य परिग्रह-त्यागी तो बहुत हो जाते हैं, पर अभ्यंतर परिग्रहत्यागी वड़ा ही दुर्लभ है।

व्याह आदि घर-गिरिस्तीके सब सावद्य–पाप कार्योंमें जो किसी प्रकारकी सम्मति नहीं देता वह–अनुमतित्याग नाम दसवीं प्रतिमाधारी श्रावक है।

---

* क्षेत्र, वस्तु–घर वगैरह, धन, धान्य, द्विपद–दास-दासी, गाय भैंस आदि चौपदे, गाड़ी आदि वाहन, शय्यासन, कुप्य–कपास आदि और भाण्ड–तांवा आदिके वर्तन। ये दस बाह्य परिग्रह हैं।

* मिथ्यात्व, वेद–स्त्री-पुरुष-नपुंसक, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, अनन्तानुवन्धि–क्रोध-मान-माया-लोभ, और राग, द्वेष ये चौदह अभ्यन्तर परिग्रह हैं।

जो घरका त्यागकर वन चला जाय और वहाँ ब्रह्मवेष धारण कर मुनिसंघमें रहे, वह ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक है। यह अपने उद्देश्यसे बने हुए भोजनको नहीं करता— अतएव इसे उद्दिष्ट-त्यागी कहते हैं। इस श्रावकके दो भेद है। एक—एक वस्त्रका रखनेवाला और दूसरा—केवल लँगोट मात्रका धारक। इनमें जो दूसरा श्रावक है वह धीर रातमें सदा प्रतिमा-योग नियमपूर्वक धरता है, हाथोंसे बालोंको उखाड़ता है, पींछी रखता है, और बैठकर, पर पाणिपात्रमें भोजन करता है। यह श्रावक बड़ा पवित्र और श्रेष्ठ ब्रह्मचारी है और श्रावकोंके घरमें कृत-कारित-अनुमोदना रहित एकवार भोजन करता है। त्रिकालयोगका नियम, वीरचर्या, सिद्धान्त—अङ्ग-पूर्वादि ग्रन्थोंका अध्ययन और सूर्यप्रतिमा-योग इन बातोंको यह श्रावक नहीं कर सकता।

इन ग्यारह श्रावकोंमें आदिके छह जघन्य श्रावक है, बादके तीन मध्यम श्रावक हैं और अन्तके दो उत्कृष्ट श्रावक कहे गये हैं। पाप जीवका वैरी है और धर्म मित्र है, इसे जो जानता है वही ज्ञाता है—आत्महितका जाननेवाला है। जो भव्य यह जानकर, कि जैनधर्म बड़ा ही पवित्र और त्रिभुवनको पवित्र करनेवाला धर्म है, उसका सम्यक्त्व-सहित पालन करता है—वह त्रिलोक-कमलको प्रफुल्ल करने-वाला सूरज है—सर्व श्रेष्ठ है, त्रिलोक-पूजित है। वह अन्तमें केवलज्ञानी होकर मोक्षलाभ करता है। इस प्रकार जिन-

शास्त्र-निपुण पवित्र मुनिजनोंने सम्यक्त्वसहित जिन निर्मल ग्यारह प्रतिमाओंका वर्णन किया उनका जो जन पालन करते हैं वे दिव्य स्वर्गीय-सुख भोगकर–देव-पूज्य होकर फिर मोक्ष जाते है।

इन सब व्रतोंके वाद एक और व्रत है। उसका नाम 'सल्लेखनाव्रत' है। जिनप्रणीत तत्वका मर्म जाननेवाले धीर-वीर मनके पुरुषोंको अन्तसमय इस व्रतको अवश्य करना चाहिए। पूर्वाचार्योंने इस व्रतकी जैसी विधि कही है वह थोड़ेमें यहाँ लिखी जाती है। कोई महान् उपसर्ग आ-जाय, दुर्भिक्ष पड़ जाय,कोई भयानक रोग वगैरह हो जाय जिसका कि कोई उपाय ही न बन सके और या बुढ़ापा आजाय उस समय ऐसे लोगोंको संन्यास–सल्लेखना धारण कर लेना उचित है। इसका फल मुनिजनोंने दान-पूजा-तप-शील आदि कहा है। इसी कारण सत्पुरुष सल्लेखनाको करते हैं। जो जिनधर्मके तत्वोंके जाननेवाले इस सल्लेखना व्रतको ग्रहण करें उन्हें पहले मन-वचन-कायकी पवित्रतासे सब प्रकारका परिग्रह त्यागकर रागद्वेषादिकको भी छोड़ देना चाहिए। इतना करके और क्षमा-वचनोंसे सबको सन्तुष्ट कर उन्हें गुरुके पास जाना चाहिए। वहाँ गुरुके सामने बड़ी भक्तिसे अपने सब पापोंकी आलोचना–निन्दा कर फिर उन्हें सल्लेखना-महाव्रत ग्रहण करना उचित है। शोक, भय, गर्व, तथा जीवित-मरणकी चिन्ता आदिको छोड़कर फिर उन्हें

केवल कर्मक्षयकी चिन्ता करनी चाहिए । इसके बाद उन सन्तोषी और जिनधर्म-धीर पुरुषोंको धीरे धीरे चार प्रकारका आहार परित्याग कर पञ्चनमस्कारमंत्रके स्मरण पूर्वक अपने प्राण छोड़ने चाहिए—सब प्रकारकी इच्छा-आशा छोड़कर केमल जिनभगवान्‌के ही ध्यानमें उन्हें रत हो जाना चाहिए । मौत आनेपर नियमसे मरना तो होगा ही, फिर क्यों न अच्छे पुरुषोंको सुखका कारण संन्यास ग्रहण करना चाहिए ? इस प्रकार जो बुद्धिमान् संन्यास ग्रहण करते हैं वे स्वर्गोंमें जाते हैं । वहाँ वे अणिमादि आठ ऋद्धियाँ, दिव्य रूप-सुन्दरता और देवाङ्गना आदि श्रेष्ठ मनोमोहक वस्तुयें प्राप्तकर चिरकालतक सुख भोगते हैं । वहाँसे फिर उत्कृष्ट मनुष्य जन्म लाभकर अन्तमें रत्नत्रयकी आराधना कर मोक्ष चले जाते हैं । वहाँ सिद्धरूपमें वे कर्मरहित होकर निराबाध, निर्मल आठ गुण और अनन्तसुख-सहित अनन्तकाल रहते हैं । इस अनन्त कालमें भी उन सिद्धोंमें कोई प्रकारका परिवर्तन या सुखकी कमी नहीं हो पाती । वे सदा फिर उसी अवस्थामें रहते हैं । यह सब एक जिनधर्मका ही प्रभाव है । इस कारण सबको अपनी बुद्धि जिनधर्ममें दृढ़ करनी चाहिए । जीने और मरनेकी इच्छा, भय, मित्रोंकी चाह और निदान— आगामी विषयभोगोंकी चाह, ये पाँच सल्लेखना व्रतके दोष हैं । इस प्रकार नेमिजिन द्वारा धर्मका पवित्र उपदेश सुनकर सब सभा

सूर्योदयसे प्रफुल्ल हुई कमलिनीकी तरह आनन्दके मारे फूल गई।

इस प्रकार सुरासुर-पूजित नेमिप्रभुने त्रिभुवन-हितकारी, स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाले रत्नत्रय-स्वरूप पवित्र धर्मका उपदेश किया। उसे सुनकर भव्यजन नमस्कार कर भव-समुद्रसे पार होनेके लिए नेमिजिनकी शरण गये।

इति एकादशः सर्गः।

बारहवाँ अध्याय ।

कृष्णको नेमिजिनका तत्वोपदेश ।

जगद्गुरु श्रीनेमिजिन केवलज्ञानसे सूरजकी तरह प्रकाशित हो रहे थे । बारह गणधर उनकी सेवामें मौजूद थे । त्रिभुवनके महा पुरुषों द्वारा उन्हें सम्मान प्राप्त था । सब विद्याओंके वे स्वामी कहलाते थे । लोकालोकको वे प्रकाशित कर रहे थे । सब तत्वोंके रचयिता वे ही कहे जाते थे । सामान्य जनकी तरह वे आहारादि दोषोंसे रहित थे । उनपर कोई उपसर्ग न होता था । चारों ओर उनके चार मुँह थे तब भी उपदेश वे सत्यका ही करते थे । उन्हें स्वभावसे ही ऐसा अतिशय प्राप्त था जो वे स्वयं तथा उनके बारह गणधर भी आकाशहीमें चलते थे । उनके द्वारा किसी जीवको कष्ट न पहुँचता था । उनके प्रभावसे चारों दिशाओंमें कोई दो-दोसौ कोस तक दुर्भिक्ष-महामारी आदि न पड़कर पृथ्वी पवित्र और बड़ी खुश रहती थी । भगवान्‌के दिव्य शरीरका बड़ा ही प्रभाव था—उसकी छाया न पड़ती थी । उनके नख-केश न बढ़ते थे और पलक न गिरते थे । भगवान् घातिकर्मोंके क्षयसे उत्पन्न दस अतिशयोंसे शोभित थे । इस समय इन्द्रने आकर लोगोंके अभ्युदयकी इच्छासे भगवान्‌से प्रार्थना की—" प्रभो, विहार कीजिए और उत्सुक भव्यजनोंको प्रिय

धर्मामृत पिलाकर तृप्त कीजिए।" इन्द्रकी प्रार्थना स्वीकार हुई। यद्यपि भगवान् कृतार्थ थे—उन्हें कुछ करना बाकी न रहा था, तथापि भव्योंके पुण्यसे उन्होंने विहार किया। भगवान्के इस विहारोत्सवके कारण देवतोंमें ख़ुशीके मारे बड़ी हल-चल मच गई। वे लहराते हुए समुद्रसे जान पड़ने लगे। उनसे सब आकाश भर गया। आनन्दसे उछल उछल कर वे भगवान्का जयजयकार कर रहे थे। उस समय देवतोंके अनन्त विमानोंसे आकाश सत्पुरुषोंके भरे-पुरे कुलके समान बिल्कुल भी खाली न रह गया। देव-देवाङ्गनागण 'जय' 'जीव' 'नन्द' आदि कहकर आकाशसे भगवान्पर फूलोंकी बरसा कर रहे थे। उस समय इन्द्रकी आज्ञासे देवतोंने अपने दिव्य प्रभावसे निराधार आकाशमें चलते हुए जगद्गुरुके पाँवोंके नीचे बड़ी भक्तिसे सोनेके कमल रचे। वे कमल बड़े ही कोमल और खिले हुए थे। उनकी सुगन्धसे दसों दिशायें महक रही थीं। उनमें रत्नकी कर्णिकायें-कलियाँ बड़ी चमक रही थीं। पद्मरागमणिकी केसर, रत्नकी कली-युक्त उन हजार दलवाले दिव्य सुवर्णमय कमलोंपर चलते हुए नेमिप्रभु आकाशमें कोई नवीन ही शरदृतुके चन्द्रमाके सदृश जान पड़ते थे। उस समय भगवान्के चरण-स्पर्शसे जो उन कमलोंसे मकरंद—धूल गिरती जाती थी—जान पड़ता था कि वे दान करते हुए जा रहे हैं। इस प्रकार सात कमल भगवान्के पीछे और सात आगे हर समय शोभित रहते थे। इनके सिवा भगवान्के

पार्श्वभागके जो कमल थे वे उनके विहार समय आकाश-रूपी आँगनमें निधि-सदृश जान पड़ते थे। इन कमलोंसे वह आकाश एक सुन्दर सरोवर-सदृश शोभता था। और देव-तोंकी कान्ति उसमें पानीकी कमीको पूरा करती थी। इस प्रकार वैभवके साथ भगवान् विहार करते जाते थे। उनके आगे बजते हुए नगाड़ोंकी जोरकी आवाज सब दिशाओंको गुँजा रही थीं और हवासे हिलती हुई उनकी धुजायें धर्मोपदेश सुननेके लिए लोगोंको प्रेमसे बुला रही हों-ऐसी शोभित हुई थीं। उनके आगे हजार आरेवाला, सूर्य-सदृश चलता हुआ श्रेष्ठ धर्म-चक्र बड़ी ही सुन्दरता धारण कर रहा था। वह धर्मचक्र अपने चमकते हुए दिव्य तेजसे मानों सारे जगत्को धर्ममय बनानेकी इच्छासे ही प्रभुके आगे आगे जा रहा था। भगवान्की मागधी-भाषा उनकी त्रिभुवनके जीवोंके साथ मित्रता सूचित कर रही थी। भगवान् भव्यजनरूपी कमलोंको प्रफुल्ल करते हुए आकाशमें कोई अद्वितीय सूरजसे शोभा पाते थे। उस समय आकाशमें देवतोंकी यह ध्वनि सब और फैल रही थी कि आइए! आइए!!—आनन्दित होकर एकको एक पुकार रहा था। देवतोंको जो खुशी हुई—वह उनके हृदयमें न समा सकी। इस कारण प्रभुके आगे कितने ही देवता नाच रहे थे, कितने गा रहे थे और कितने उछल-कूद मचा रहे थे। प्रभुकी महिमासे उस समय सारा आकाश सत्पुरुषोंके मनकी तरह निर्मल हो गया था और दिशायें अच्छे पुरुषोंके आचा-

रण-सदृश धूल-धूसरता रहित होगई थी। देवतागण भगवान्के उत्साहका गान कर रहे थे। किन्नरगण प्रभुका कुन्दके फूल-सदृश निर्मल यश बखान करते थे और भक्तिसे फूले हुए विद्याधर लोग अपनी अपनी प्रियाओंके साथ आकाशरूपी रंगभूमिमें नेमिजिनकी पापनाशिनी पवित्र कीर्तिका पाठ पढ़ रहे थे। उस समय कूड़े-करकट रहित पवित्र रत्नमयी पृथ्वी काचके समान निर्मल जान पड़ती थी—वह मानों श्रेष्ठ लोगोंकी पवित्र बुद्धि ही है। वायुकुमार-देवतोंने तब आकर एक योजन तककी पृथ्वीको धूल-कंकर-पत्थर आदि रहित बना दिया। मेघकुमारोंने सुगन्धित जलकी वर्षासे सब दिशाओंको सुगन्धित किया। उस समय भगवान्के प्रभावसे गेहूँ, चावल, मूँग--आदि धान खूब फले-फूले। पृथ्वीने उनके द्वारा एक घरानेदार स्त्रीकीसी शोभा धारण की। वृक्ष सब ऋतुओंके फल-फूलोंसे सत्पुरुषोंके समान झुक गये। इस प्रकार फल-फूल-पत्ते-धान आदि द्वारा फली-फूली भूमि लोगोंके बड़ी सुखकी कारण बन गई। विहार करते हुए भगवान्के पीछे जो वायु बहा—जान पड़ा जिनके प्रभावसे वह भी उनकी भक्ति करनेको सज्जित है। घरमें निधि आनेसे जैसा आनन्द होता है वैसा ही परमानन्द भगवान्के विहारसे अकस्मात् सब लोगोंको हुआ। झारी, पंखा, दर्पण, कुंभ आदि आठ मंगल-द्रव्य हाथोंमें लेकर देवाङ्गनायें प्रभुके आगे आगे चलती थीं। देवतागण आनन्दसे फूलकर इस

प्रकार चौदह अतिशय रचते जाते हैं। सैकड़ों सुन्दर देवाङ्गनायें उस समय नेमिप्रभुके आगे आगे खुशीके मारे नृत्य करती हुई जा रही थीं। भगवान् आकाशमें ऋद्धिधारी मुनियों और सैकड़ों विद्याधर-राजोंसे तथा पृथ्वीपर चार संघों और पशुओं द्वारा भक्तिसे सेवा किये जा रहे थे। जगद्गुरु नेमिप्रभु इस प्रकार पृथ्वीपर सब ओर फैले हुए बारह सभाओंके देव-मनुष्य–आदि तथा चौंतीस अतिशयोंसे शोभित हो रहे थे।

इस तरह त्रिभुवन-पिता, पवित्रात्मा, पृथ्वीतलको पवित्र करनेवाले, यादव-वंश-सूरज, लोक-चूड़ामणि, सुरासुर-पूजित भगवान् नेमिजिनने सौरठ, गुजरात, अवन्ति, चोल, कीर, कोंकण, काश्मीर, अंग, वंग (बंगाल), कलिंग, कर्णाटक, लाट, भोट (भूटान), आदि सब आर्यदेशोंमें विहार किया। भव्यबन्धु जिनने उन उन देशोंमें जाकर अपने, सर्व सन्देहोंके नाश करनेवाले और सुखकारी उपदेशसे लोगोंका मिथ्यान्धकार नाशकर प्रबोध दिया। उस समय अनेक जनोंने भगवानके पवित्र उपदेशसे श्रेष्ठ रत्नत्रय मार्ग ग्रहण कर स्वर्ग-मोक्षका सुख प्राप्त किया। जहाँ जगद्गुरु तीर्थंकर देव विराजमान हों वहाँ ऐसा कौन जन रह जाता है जो उनके तत्वको न समझे—न ग्रहण करे। इस-प्रकार देवगण-पूजित और शान्तिकर्त्ता नेमिप्रभु सब आर्यदेशोंमें विहारकर पृथ्वीको पवित्र करते हुए द्वारिका लाँघकर सब संघके साथ गिरनार पर्वतके जंगलमें आकर ठहरे।

इन्द्रकी आज्ञा पाकर धनपति कुबेरने उसी समय पहलेके सदृश दिव्य समवशरण बनाया । कमलिनीको भूषित करनेवाले सूरजकी तरह भगवान् नेमिप्रभुने मानस्तंभादि-शोभा-सम्पन्न उस दिव्य समवशरणको अलंकृत किया ।

भगवान्‌के आगमन समाचार सुनकर सम्यग्दृष्टि त्रिखण्डेश कृष्ण और बलदेव अपनी सब सेना तथा सन्तुष्ट बन्धु-बान्धव परिजनके साथ बड़े राजसी ठाटसे भगवान्‌के दर्शन करनेको आये । जिनकी दिव्य सभाको उन्होंने दूरहीसे देखा । हवासे फड़कती हुई धुजाओं द्वारा वह उन्हें बुलाती हुईसी जान पड़ी । पहले प्रदक्षिणा कर बड़े जयजयकारके साथ उन्होंने उस पृथ्वीतलको पवित्र करनेवाली पावन सभामें प्रवेश किया । अपनी सुन्दरतासे मनको मोहित करनेवाली उस सभाकी दिव्य शोभाको देखकर उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता हुई—मानों जैसे उन्हें निधि मिल गई । पहले उन्होंने मानस्तंभ, चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष और स्तूप—कृत्रिम-पर्वतोंकी प्रतिमाओंकी पूजा की । इसके बाद निर्मल स्फटिकके बने हुए श्रीमण्डपमें, सबके ऊपरके विशाल तीसरे चबूतरेपर सुसज्जित, सुवर्ण-रत्नके दिव्य सिंहासनपर विराजमान, जगद्गुरु नेमिजिनकी श्रेष्ठ जल-गन्ध-अक्षत-पुष्प-नैवेद्य-रत्नदीप-धूप-फल आदि द्वारा उन्होंने पूजा की और चरणोंमें अर्घ चढ़ाया । भगवानकी इस समयकी शोभा बड़ी ही मनोहर थी । वे अपने दिव्य प्रभावसे आकाशमें चार अंगुल निराधार बैठे हुए थे । अनन्त-ज्ञान, अनन्त

दर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यसे उनका दिव्यशरीर दमक रहा था। इन्द्रादि देवतागण, विद्याधर, राजे-महाराजे उनकी पूजा कर रहे थे। जिसपर मोतियोंकी मालायें लूम रही हैं—ऐसे तीन छत्र उनपर शोभा दे रहे थे। जिसे देखकर शोक रह नहीं पाता उस अशोकवृक्षके नीचे भगवान् विराजे हुए थे। गिरते हुए झरनेके सदृश जान पड़नेवाले उज्ज्वल चँवर उनपर ढुर रहे थे। उनके नगाड़ों-की बलन्द आवाजसे पृथ्वी गूँज रही थी। कोटि सूरज-समान तेजस्वी उनका भामण्डल चमक रहा था। देव-देवा-ङ्गनागण उनपर नाना प्रकारके सुन्दर सुन्दर फूलोंकी बर-सा करते थे। भगवान् अपनी दिव्यध्वनिरूपी सुधा-वर्षासे सब सभाओंको तृप्त कर रहे थे। ऐसे देवोंके देव, त्रिभुवन-वन्दनीय और संसार-समुद्रसे पार करनेवाले नेमिप्रभुके दर्शन कर यादव-प्रभुओंको बड़ा आनन्द हुआ। इसके बाद उन्हों-ने भक्ति-भरे हृदयसे भगवानकी स्तुति की। हे प्रभो, तुम लोक-कमलको प्रफुल्ल करनेवाले सूरज हो, परम उदयशाली हो, मिथ्यात्व-अन्धकारको नाश कर जगत्को प्रकाशित किये हो। तुम त्रिकालके ज्ञाता हो, त्रिभुवन-पूजित हो, भव्यों के आधार हो, निर्मद हो, योगिजन-वन्दित हो। तुम पवित्र हो, परमानन्दमय हो, दुर्गतिके रोकनेवाले हो, सुरासुर पूजित हो। तुम जगत्के जीवोंके स्वामी हो, गुरु हो, बं गुणी हो, पितामह हो, पिता हो, सब जीवोंके शरण हो

नाथ, आपके गुण अनन्तानन्त हैं—उनका कोई पार नहीं। वे समुद्रसे भी गंभीर और मेरु पर्वतसे कहीं अधिक उन्नत हैं। भगवन्, आपका चरणाश्रय बड़ा ही सुखका कारण है। वह जन बड़ा ही अभागी है जो आपके रहते और आपके तत्व न समझे। स्वामिन्, जो सुख, लोग आपके चरणोंके ध्यानसे प्राप्त कर सकते हैं वह दूसरों द्वारा स्वप्नमें भी दुर्लभ है। इस कारण नाथ, प्रार्थना करते हैं कि जबतक हम संसार पार न करलें तबतक सर्वार्थ-साधिनी आपकी चरण-भक्ति हमें सदा प्राप्त हो। इस प्रकार नेमिजिनकी स्तुति कर और वार वार प्रणाम कर उन्होंने अपनेको कृतार्थ समझा। इसके बाद सभामें अन्य जो वरदत्त आदि गणधर तथा तपस्वी जन थे उनकी भक्तिसहित वन्दना कर वे नर-सभामें जाकर सिर झुकाये बैठ गये। और अपनी दृष्टि उन पवित्र-हृदय भाइयोंने भगवानके चरणोंमें लगाई। वहाँ उन्होंने दान-पूजा-व्रत-शील-उपवासमय सुखके कारण जिनप्रणीत पवित्र धर्मका उपदेश नेमिजिन द्वारा सुना।

इसके बाद त्रिखण्डेश श्रीकृष्ण सुरासुर-पूजित नेमिप्रभुको प्रणाम कर हाथ जोड़कर बड़े विनयके साथ बोले—प्रभो, आपके द्वारा तत्वोंके जाननेकी मेरी बड़ी इच्छा है। आप कहिए कि तत्व किसे कहते है? तब लोकवन्धु श्रीनेमिजिन कृष्णके प्रश्नसे विस्तारके साथ तत्वोपदेश करने लगे। भगवानके इच्छा न होते हुए भी तीर्थंकर नाम पुण्यके प्रभावसे उनके

मुख-कमलसे काचमें देख पड़नेवाले प्रतिबिम्बकी तरह निर्विकार दिव्यध्वनि निकली। उस ध्वनिमें तालु, ओठ, दाँत आदिका सम्बन्ध न रहने पर भी वह स्पष्ट अक्षरमय थी। उसे सुनकर सबका सन्देह दूर हो जाता था। उसे नाना तरहकी भाषा जाननेवाले सभी देश-विदेशके लोग समझ लेते थे। भगवान् बोले—महाभव्य राजन्, सुनिए; मैं तुम्हें यथाक्रमसे तत्व, तत्वका स्वरूप और तत्वका फल कहता हूँ।

आगममें जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह तत्व कहे गये हैं। उन्हें मैं कहता हूँ। उसके द्वारा तुम उनका स्वरूप जान जाओगे। जीवादिक पदार्थोंका जो यथार्थ रूप-स्वरूप है वह तत्व है। उसका निश्चय करलेना भव्योंको मुक्तिका कारण है। तत्व सामान्यपने एक ही है। वह जीव और अजीवके भेदसे दो प्रकारका है। मुक्त, अमुक्त और अजीव इस तरह वह तीन प्रकारका है। परमागममें जीवके मुक्तजीव और संसारीजीव ऐसे दो भेद किये हैं। और संसारी जीवके भी भव्य तथा अभव्य ऐसे दो भेद हैं। तब सब भेदोंको इकट्ठा करदेनेसे तत्व चार प्रकारका हो जाता है। फिर यही तत्व पञ्चास्तिकायके भेदसे पाँच प्रकारका हो जाता है और वे पञ्चास्तिकाय ये हैं—जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और आकाशास्तिकाय। इन पाँच अस्तिकायोंमें काल और शामिल कर दिया जाय तो तत्व छह भेदरूप हो जाता है। इस

प्रकार तत्वके जिनागममें विस्तारसे कोई अनन्तानन्त भेद बतलाये गये हैं।

इनमें जीवका लक्षण चेतना है। वह द्रव्य-स्वभावसे नित्य है—उसका कभी नाश न हुआ, न है और न होगा। और मनुष्य-देव-पशु आदि पर्यायकी अपेक्षा वह अनित्य है—नाशवान भी है। जीव ज्ञाता-दृष्टा तथा पुण्य-पापोंका कर्त्ता और भोक्ता है। वह शरीरके परिमाणवाला, अनन्तगुणमय और ऊर्द्धगति-स्वभावसहित है। ऐसा होकर भी वह कर्मोंके वश हुआ संसारमें घूमा करता है। इस कारण ऋषिगण उसे संसारी कहते हैं। वह अपने संकोच और विस्ताररूप स्वभावको लिये प्रदेशोंसे प्रदीपकी तरह घट-बढ़ सकता है। अर्थात् जैसे प्रदीपको एक मकानमें रखनेसे वह सारे मकानको प्रकाशित करता है और वही प्रदीप यदि एक घड़ेमें रख दिया जाय तो वह उस घड़े मात्रमें ही प्रकाश करेगा। उसी तरह जीवको उसके कर्मोंके अनुसार जैसा छोटा या बड़ा—कभी हाथीका शरीर और कभी एक चींटीका शरीर मिलेगा उसीके अनुसार उसके प्रदेशोंमें दीपककी तरह संकोच विस्तार हो जायगा। पर इतना ध्यान रखना चाहिए कि उसके प्रदेशोंकी जितनी संख्या है—उसमें किसी प्रकारकी घट-बढ़ न होगी। यह संकोच-विस्तार जीवका स्वभाव है।

यह जीव चौदह मार्गणा और चौदह ही गुणस्थानोंसे जाना जाता है। उन चौदह मार्गणाओंके नाम अन्य ग्रन्थसे लिखे

जाते हैं । १–गतिमार्गणा, २–इन्द्रियमार्गणा, ३–कायमार्गणा, ४–योगमार्गणा, ५–वेदमार्गणा, ६–कषायमार्गणा, ७–ज्ञान-मार्गणा, ८–संयममार्गणा, ९–दर्शनमार्गणा, १०–लेश्यामार्गणा, ११–भव्यमार्गणा, १२–सम्यक्त्वमार्गणा, १३–संज्ञीमार्गणा और १४–आहारमार्गणा ।

इस जीवके औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, मिश्रभाव, औदयिक भाव और पारिणामिकभाव, ये पाँच स्वतत्व कहे जाते है । अर्थात् जीवहीके ये होते हैं। इन गुणोंसे जीव जाना जाता है । जीव उपयोगमय है । उपयोग दो प्रकारका है । एक–ज्ञानोपयोग और दूसरा–दर्शनोपयोग । इनमें ज्ञानोपयोग– आठ प्रकारका है । यथा–मतिज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतिज्ञान और कु-अवधिज्ञान । दर्शनोपयोगके चार भेद हैं । यथा–चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन । ज्ञान साकार है, इस कारण कि वह पदार्थोंके विशेषरूपको ग्रहण करता है–वस्तुओंके विशेष आकार-प्रकारादिकका वह ज्ञान कराता है । और दर्शन निराकार है, इस कारण कि उसमें केवल पदार्थोंकी सत्ताका अवभास मात्र होता है । इत्यादि गुणों द्वारा बुद्धिमानोंको जीवका स्वरूप जानना चाहिए । ऊपर सामान्यतासे कही गई बातोंका विस्तारसे वर्णन ‘ गोम्मटसार ’ ‘ सर्वार्थसिद्धि ’ आदि ग्रन्थोंमें किया गया है । वह जिज्ञासु पाठकोंको उन ग्रन्थोंके स्वाध्यायसे जानना

चाहिए। जान पड़ता है ग्रन्थ-विस्तारके भयसे ग्रन्थाकर्त्ताने पदार्थोंका यह सामान्य विवेचन किया है।

जीवके सम्बन्धमें ग्रन्थकार कुछ थोड़ा और भी लिखते हैं। इसे 'जीव' इसलिए कहते हैं कि यह अनन्तकालसे 'जीता आ रहा है,' वर्तमानमें 'जीता है,' और भविष्यतमें अनन्तकालतक 'जीता रहेगा'। इसके दस प्राण है, इस-कारण इसे 'प्राणी' कहते है। यह नाना जन्मोंको धारण करता है, इसलिए इसे 'जन्तु' कहते हैं। क्षेत्र इसका स्वरूप है, और उसे यह जानता है, अत इसे 'क्षेत्रज्ञ' कहते है। उत्कृष्ट भोगोका यह स्वामी है, इस कारण इसे 'पुरुष' कहते हैं। आत्माको यह आत्मा द्वारा पवित्र करता है, इसलिए परमाग-मके जाननेवालोंने इसे 'पुमान्' कहा है। यह नित्य अनेक भवोंमें आता है, इसलिए इसे 'आत्मा' कहते हैं। आठ कर्मोंमें रहता है, इस कारण इसे 'अन्तरात्मा' कहते हैं। ज्ञानगुणवाला है इसलिए 'ज्ञानी' कहा गया है। इस प्रकार नाना पर्याय नामोंसे तत्वज्ञोंको जीवकी पहचान करनी चाहिए। यह जीव नित्य है-- अविनाशी है और पर्यायें सब नाशवान् हैं। इस जीवका लक्षण उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीन गुण-मय कहा गया है। इस प्रकार गुण युक्त आत्माको जो लोग जान लेते हैं वे भव्य है और सम्यग्दृष्टि हैं। और सब मिथ्या-दृष्टि हैं। "न आत्मा है और न मोक्ष हैं, न कर्ता है और न भोक्ता है," ऐसा कहना मिथ्यादृष्टियोंका है और पापका

कारण है। इसे छोड़कर जो आत्माका अभी स्वरूप कहा गया, राजन्, तुम उसीपर विश्वास करो।

फिर इस जीवके संसारी और मोक्ष ऐसे दो भेद किये गये है। वह संसारी तो इसलिए है कि—कर्म-परवश हुआ नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देव इस प्रकार चार गतिरूप अपार संसारमें सरता है—भ्रमण करता है। और त्रिभुवन-श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय द्वारा सब कर्मोंका नाशकर अनन्तसुखमय मुक्त अवस्था प्राप्त कर लेता है, इस कारण इसे 'मुक्तजीव' कहा है।

देव-गुरु-शास्त्रके निर्मल श्रद्धानको 'सम्यग्दर्शन' कहते हैं। वह मोक्षका कारण है। जीवादिक पदार्थोंके सत्य स्वभावका जो प्रकाशक—ज्ञान करानेवाला है वह 'ज्ञान' 'सम्यग्ज्ञान' है। यह ज्ञान अज्ञानान्धकारके विस्तारका नाश करनेवाला और धर्मका उपदेशक है। हिंसादिके त्यागरूप तेरह प्रकार चारित्रको सम्यक्चारित्र कहा है। सबके साथ मध्यस्थभाव रखना उसका लक्षण है। इन तीनोंकी परिपूर्णता ही मोक्षका साक्षात् मार्ग कहा गया है। श्रेष्ठ सम्यक्त्वके होते ही ज्ञान और चारित्र भव्योंको मोक्ष-सुखके कारण हो सकते हैं और 'ज्ञान' जब दर्शन-चारित्र युक्त हो तब उसे जिनसेनादि आचार्योंने मुक्तिका साधन कहा है। जो चारित्र, ज्ञान और दर्शन युक्त नहीं वह अन्धेके उद्योगकी तरह कुछ फलका देनेवाला भी नहीं। अन्यत्र इन तीनोंके सम्बन्धमें लिखा है कि "सम्य-

"दर्शनसे दुर्गतिका नाश होता है, सम्यग्ज्ञानसे कीर्त्ति होती है, और चारित्रसे लोकमें पूज्यता होती है और इन तीनोंके एकत्र मिल जानेसे मुक्ति होती है।" मिथ्यादृष्टियोंने एकान्तसे इन तीनोंमेंसे एक एकहीको ग्रहण कर लिया,इस कारण उनके लोकमें छह भेद हो गये। श्रीसर्वज्ञ जिनभगवान्ने जो पवित्र धर्मका लक्षण कहा, वही सत्य है--यथार्थ है और मोक्षका देनेवाला है और नहीं; यह उस सम्यग्दर्शनकी शुद्धता है। आप्त--देव वह है जो भूख-प्यास आदि अठारह दोषोंसे रहित हो, और केवलज्ञानी हो। बाकी सब आप्ताभास--नाममात्रके आप्त हैं। उनमें सच्चे आप्तका कोई लक्षण नहीं है। और उन जिन-भगवान्के जो वचन हैं वही सच्चा आगम है, शेष तो वचनोंका केवल विकार है। पदार्थ, तत्त्वज्ञोंने जीव और अजीवके भेदसे दो प्रकारका बतलाया है। जीवका लक्षण पहले कह दिया गया है। वह जीव भव्य, अभव्य और मुक्त ऐसे तीन प्रकारका है। 'भव्य' वह है जो सोनेसे पृथक् किये पाषाणकी तरह कर्मोंसे पृथक् होकर सिद्धि लाभ करेगा और 'अभव्य' अन्ध-पाषाणकी तरह, जो किसी भी यत्नसे सोनेसे अलग नहीं किया जा सकता, कभी कर्मोंसे मुक्त न होगा। 'मुक्त' वह है जिसने आठ कर्मोंको नाशकर आठ गुण प्राप्त कर लिये और जो त्रिलोक-शिखरपर विराजमान होकर अनन्तसुख भोगता है। उसे 'सिद्ध' कहते हैं। वे सिद्ध भगवान् कर्माञ्जनरहित हैं और साकार होकर भी

निराकार है। इसका भाव यह है कि सिद्ध आत्माको जैन-धर्ममें पुरुषाकार कहा है । यथा—" पुरुसायारो अप्पा "। जीव जितने छोटे या बड़े मनुष्य-देहसे मुक्त होता है उससे कुछ कम आकारमें शुद्ध आत्मा मोक्षमें रहता है । उसी कारण आत्माको आकारसहित कहा है। और दूसरा आकारका अर्थ है, जो स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवाला हो। जैसे जड़ वस्तु घट-पट वगैरह। ऐसा आकार सिद्धोंका नहीं है । इस कारण वे निराकार भी हैं। इन सिद्धका ध्यान करनेसे भव्य मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं । त्रिखण्डेश हरे, इस प्रकार तुम्हें जीव तत्त्वका स्वरूप कहा गया । अब अजीव तत्त्वका स्वरूप कहा जाता है । सुनिए । धर्म, अधर्म, आकाश, काल, और पुद्गल इन भेदोंसे अजीव पाँच प्रकारका है । इनमें जीव-पुद्गलको चलनेके लिए उपकारक—उदासीनरूपसे जो सहायक है—किन्तु प्रेरक नहीं है, वह 'धर्मद्रव्य' है। पानी जैसे मछलियोंको चलनेमें सहायक है, पर प्रेरणा करके उनको नहीं चलाता है। 'अधर्मद्रव्य' जीव-पुद्गलको ठहरानेमें उदासीनरूपसे सहायक है—बलात्कार वह चलते हुए जीव-पुद्गलको नहीं ठहराता। जैसे वृक्षकी छाया रास्तागीरको जबरन् न ठहराकर यदि वह स्वयं ठहरना चाहे तो उसे उदासीनरूपसे स्थान देती है । जीव-अजीवादि द्रव्योंको जो अवकाश दे—स्थान दे वह आकाश है । वह अमूर्तिक—स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण रहित, सर्वव्यापी और निष्क्रिय है । कालका लक्षण है वर्तना । वह वस्तुओंकी

अवस्थाका परिवर्तन करता रहता है। जिनने उसकी अनेक पर्यायें-अवस्थायें कही हैं। जैसे कुम्हारके चक्रको घुमानेमें उसके नीचेकी शिला निमित्त कारण है उसी तरह वर्तना-लक्षण काल वस्तुओंके परिणमनमें निमित्त कारण है। व्यवहार-कालसे मुख्य-काल-निश्चयकाल जाना जाता है। जैसे जंगलमें सटा देखकर सिंहका ज्ञान हो जाता है। वह निश्चयकाल लोक-प्रमाण है। उसके अणु रत्न-राशिकी तरह सब जुदे जुदे हैं और सदा ही जुदे जुदे रहेंगे। इसी कारण कालको केवली जिनने अकाय भी कहा है। आचार्योंने जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाशको पञ्चास्तिकाय कहा है। वह इसलिए कि इनके प्रदेश मिले हुए हैं। यहाँ सवाल हो सकता है कि पुद्गलके शुद्ध परमाणुमें तो और कोई प्रदेशोंकी मिलावट नहीं है, फिर वह काय कैसे कहा जा सकता है? इसका उत्तर आचार्योंने दिया है कि यद्यपि शुद्ध परमाणुमें कोई अन्य मेल-मिलाप नहीं है तथापि उसमें वह शक्ति सदा रहती है जिससे अन्य परमाणु आकर उससे सम्बन्ध कर सकते है। इस शक्तिकी अपेक्षा परमाणु भी सकाय है। पर कालके अणुओंमें यह शक्ति ही नहीं है। धर्म-अधर्म-आकाश-काल ये चार द्रव्य अमूर्त्तिक, निष्क्रिय, नित्य और अपने अपने स्वभावमें स्थित हैं। हाँ और कृष्ण, जीव भी अमूर्त्तिक है। मूर्त्तिक केवल एक पुद्गल द्रव्य है। उसके भेद मैं अब तुम्हें कहता हूँ। स्पर्श, रस,

गन्ध, वर्ण, शब्द—आदि पुद्गल कहे जाते हैं। इनमें हर समय पूरण-गलन होता रहता है, इस कारण इनका पुद्गल नाम सार्थक है। स्कन्ध और अणु इन भेदोंसे पुद्गल दो प्रकारका है। स्निग्ध और रूक्ष गुणवाले परमाणुओंके समूहको स्कन्ध कहते हैं। इस स्कन्धका फैलाव दो-अणुओंके स्कन्धसे लेकर सुमेरु-सदृश महास्कन्ध पर्यन्त है। छाया, आतप, अन्धकार, चाँदनी, पानी आदि स्कन्धोंके भेद हैं। महापुराणमें कहा गया है—परमाणु स्कन्धरूप कार्यसे जाना जाता है। वह स्निग्ध-रूक्ष और शीत-उष्ण इन दो-दो स्पर्शवाला है अर्थात् स्निग्ध और रूक्षमेंसे एक स्निग्ध या रूक्ष और शीत तथा उष्णमेंसे एक शीत या उष्ण—ऐसे दो स्पर्शवाला है। पाँच वर्णोंमेंसे एक वर्ण और छह रसोंमेंसे एक रसवाला है। परमाणु नित्य होकर भी पर्यायकी अपेक्षा अनित्य है।

पुद्गलके छह भेद हैं। यथा—सूक्ष्मसूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, स्थूलसूक्ष्म, स्थूल और स्थूलस्थूल। अणु पुद्गलका सूक्ष्मसूक्ष्म भेद है। वह न देख पड़ता है और छुआ जा सकता है। कर्म-वर्गणायें पुद्गलका दूसरा सूक्ष्म भेद है। उनमें अनन्त परमाणु हैं। शब्द-स्पर्श-रस-गन्ध यह सूक्ष्मस्थूलका भेद है। इस कारण कि ये आँखों द्वारा न देखे जाकर भी अन्य इन्द्रियोंसे ग्रहण किये जाते हैं। छाया, चाँदनी, आतप आदि स्थूलसूक्ष्म पुद्गल हैं। इसलिए कि वे आँखोंसे देखे जाते हैं पर नष्ट नहीं किये जा सकते। स्थूल पुद्गल वह है जो

जुदा होकर पीछा मिल सके—जैसे पानी, घी, तैल आदि। और वह स्थूलस्थूल पुद्गल कहलाता है जो एकवार टूटकर फिर न मिल सके—जैसे पृथ्वी, पत्थर, काठ—आदि। ग्रन्थकारने यहाँ अन्य ग्रन्थकी दो गाथायें उद्धृत की हैं। पर उनका अर्थ वही है जो ऊपर लिख दिया गया। इस कारण उनका अर्थ पुनः लिखना उचित न समझा। इत्यादि जिनप्रणीत पदार्थोंका जो श्रद्धान करता है वह मोक्ष जाता है। लोकालोकके जाननेवाले और सुरासुरपूजित, जगद्गुरु नेमिप्रभुने इस प्रकार छह द्रव्योंका स्वरूप कहकर पुनः विनयसे नत-मस्तक और भक्ति-रत कृष्णको जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष—इन सात तत्त्वोंका स्वरूप, मोक्षका साधन-दो प्रकारका रत्नत्रय, इसका फल, शलाका-पुरुषोंका चरित, चार गति, उनके त्रिकाल-गत भेद आदि सब त्रिलोककी साररूप श्रेष्ठ बातोंको बड़े विस्तारके साथ कहा—लोकको प्रकाशित करनेवाले सूरजकी तरह सब स्पष्ट समझा दिया। इस प्रकार नेमिजिनके द्वारा श्रेष्ठ तत्वोपदेशको कृष्णने बलदेवके साथ साथ सुना। उस उपदेशके प्रभावसे कृष्णको सब सुखोंके कारण सम्यक्त्व-रत्नकी प्राप्ति होगई। इससे कृष्ण बड़े सन्तुष्ट हुए। उनने बड़ी भक्तिसे प्रभुको सिर नवाया। इसके बाद धर्मामृत पीकर प्रसन्न हुए बलदेव और कृष्णने बड़े आनन्दसे भगवानकी प्रार्थना की।

इनके सिवा अन्य जिन जिन लोगोंने भगवान्‌का पवित्र उपदेश सुना—उनमें कितनोंने सम्यक्त्व ग्रहण किया, कितनोंने जिनदीक्षा लेली, और कितनोंने अणुव्रतोंको ग्रहण किया। मतलब यह कि भगवान्‌की कृपासे सभी सुखी हुए। इस प्रकार बारहों सभाके देव-मनुष्यादिक भगवान्‌के उपदेशामृतका पान कर बड़े ही सन्तुष्ट हुए। वे तत्वार्थका पवित्र उपदेश करनेवाले और केवलज्ञानरूपी चन्द्रमा, लोक-श्रेष्ठ नेमिजिन सत्पुरुषोंको सुख दें। वे देवोंके देव और सुरासुर-पूजित नेमिप्रभु मुझे भी अपने चरणोंकी कल्याणकारिणी भक्ति दें।

इस प्रकार जिनकी देवतोंने पूजा की, जो लोकालोकके प्रकाशक हैं, जिनने भव्य जनरूपी कमलोंको सूरजके सदृश प्रफुल्ल कर, मिथ्यात्व-अन्धकारको नष्ट किया और जो केवलज्ञान प्राप्त कर गुण-सागर हुए वे त्रिभुवन-बन्धु, स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले नेमिप्रभु श्रेष्ठ सुख दें।

इति द्वादशः सर्गः।

तेरहवाँ अध्याय ।

देवकी, बलदेव और कृष्णके पूर्वभव ।

वसुदेवकी स्त्री सती देवकी वरदत्त गणधरसे हाथ जोड़ कर बोली—एक बार प्रभो, अपने शुद्ध चारितसे पृथ्वी-तलको पवित्र करते हुए तीन मुनियुगल मेरे घरपर आहार करनेको आये । भगवन्, उन्हें देखकर मुझे बड़ा ही प्रेम हुआ । इसका क्या कारण है देव ? सुनकर ज्ञान ही जिनका शरीर है वे वरदत्त गणधर बोले—देवी, सुनो । मैं इस सम्बन्धका सब कारण तुम्हें बताता हूँ ।

" इस जम्बूद्वीपमें भारतवर्ष प्रसिद्ध देश है । उसमें मथुरा नाम नगरी बड़ी सुन्दर और जिनभवनोंसे युक्त है । उसका राजा सूरसेन है । वह बड़ा ही प्रजापालक, प्रतापी, शत्रुजयी और नीतिमान् है । इसी मथुरामें एक भानुदत्त नाम बड़ा धर्मात्मा सेठ रहता है । उसकी सेठानी यमुना बड़ी साध्वी और सुन्दरी है । उसके कोई सात लड़के थे । उनके नाम थे—सुभानु, भानुकीर्ति, भानुषेण, भानु, सूरदेव, सूरदत्त और सूरसेन ।

एक दिन मथुरामें अभयनन्दी नाम मुनि आये । नृपति सूरसेन और भानुदत्त उनकी वन्दनाको गये । बड़ी भक्तिसे

मुनिको नमस्कार कर उन्होंने उनके द्वारा जिनप्रणीत श्रेष्ठ धर्मका उपदेश सुना । उससे उन्हें बड़ा वैराग्य हो गया । तब वे सब राज्य-वैभव, धन-दौलत छोड़कर स्वपरके हितकी इच्छासे साधु होगये । सेठकी स्त्री यमुना भी वैराग्यसे जिन-दत्ता आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर योगिनी बन गई । माता-पिताके इस प्रकार वनवासी हो जानेसे उन सातों भाइयोंको बड़ी स्वतंत्रता मिल गई । उनके पास धन तो मनमाना था ही; सो उस धनको व्यसनोंमें स्वाहा करने लगे । उन्हें इस प्रकार दुराचारी और यमके सदृश क्रूर तथा चोर देखकर मथुराके नये राजाने वस्तीसे निकाल दिया । यहाँसे चलकर वे सातों भाई मालवेकी प्रसिद्ध नगरी उज्जैनके डरानवे मसानमें आ-कर ठहरे । उस समय रात अधिक बीत चुकी थी । वे अपने छोटे भाई सूरसेनको वहीं बैठाकर बाकी छहों भाई शहरमें चोरी करनेको चल दिये । इस कथाको यहीं छोड़कर एक दूसरी कथा लिखी जाती है । उसका इसी कथासे सम्बन्ध है ।

उज्जैनके राजाका नाम वृषभध्वज था । राजाके पास दृढ़-प्रहारी नामका एक बड़ा ही वीर हजार शूरवीरोंका प्रधान नायक नौकर था । उसकी स्त्रीका नाम वप्रश्री था । उसके वज्रमुष्टि नाम लड़का था । वहाँ विमलचन्द्र सेठ रहता था । सेठकी स्त्रीका नाम विमला था । इनके मंगी नाम एक लड़की हुई । वह बड़ी सुन्दरी थी । मंगीका व्याह वज्रमुष्टिके साथ हुआ ।

वसन्तऋतुमें एक दिन राजा वृषभध्वज वनविहारके लिए गया। शहरके सेठ-साहुकार भी गये। मंगी भी बागसे एक फूलमाला लानेकी इच्छासे जानेको तैयार हुई। मंगीका यह जाना उसकी दुष्ट सास वप्रश्रीको अच्छा न लगा। मंगीसे वह चिढ़ गई। उसने तब गुस्सा होकर एक घड़ेमें भयानक काला साँप रखकर ऊपरसे उसे फूलमालासे भर दिया। इसके बाद वह बड़े मीठेपनसे अपनी बहू मंगीसे बोली— बहू, बागमें काहेको जाती हो। मैंने तो तुम्हारे लिए यहीं माला ले रक्खी है। देखो, वह घड़ेमें रक्खी है। जाकर उसे ले-आओ। हाय! पापी स्त्रियाँ क्रोध चढ़ जानेपर क्या नहीं कर डालती। वे साँपिनके समान झटसे दूसरोंके प्राणोंको हर लेती हैं। बेचारी भोली मंगी सासके कहेसे माला लानेको चली गई। उसने ज्यों ही घड़ेमें हाथ डाला कि त्यों ही उसे उस दुष्ट कालसर्पने डस लिया। उसी समय जहर उसके सब शरीरमें फैल गया। वह मरी हुईके सदृश गश खाकर गिर पड़ी। मोहसे अन्धा हुआ प्राणी जैसे अपने हित-अहितको नहीं जानता, वही दशा मंगीकी होगई। उसे कुछ भी सुध-बुध न रही। उसकी सास वप्रश्रीने तब उसके शवको घासमें लपेट कर मसानमें फिंकवा दिया।

वज्रमुष्टि भी बागमें गया हुआ था। मंगीपर उसका बड़ा प्यार था। वह मंगीको बागमें न आई देखकर घरपर आया। मंगी उसे वहाँ भी न देख पड़ी। उसने तब घबरा-

कर अपनी माँसे पूछा-माँ, मंगी कहाँ है? सुनकर दुष्ट वप्रश्री बोली-बेटा, क्या कहूँ, उसे तो कालरूपी साँपने काट लिया। मैंने मोह-वश उसे न जलाकर घासमें लपेट कर मसानमें डलवादी है। सुनकर ही वज्रमुष्टि हाथमें तल-वार लिए उसी समय घरसे निकल गया। मंगीके शोकसे दुखी होकर वह सीधा उसी ओर मसानमें पहुँचा। रात होगई थी। वहाँ उसने उस भयंकर मसानमें एक वरधर्म नाम पवित्र मुनिको ध्यानमें बैठे हुए देखे। भक्तिसे नम-स्कार कर वह उनसे बोला-प्रभो, यदि मैं अपनी प्रियाको फिरसे देख पाऊँगा तो आपके सुख-कर्त्ता चरणोंकी हजार दलवाले कमलोंसे पूजा करूँगा। यह कहकर वज्रमुष्टि जंगलमें मंगीको ढूँढ़ने लगा। भाग्यसे मुनिको छूकर आई हुई हवाके लगनेसे मंगी, जी उठी। उसे सचेत देखकर वज्रमुष्टिने उस परका घास निकालकर दूर फैंका और उसे लाकर वह बोला प्रिये, तुम इन योगी महाराजके पास थोड़ी देरतक बैठो। मैं अभी इनकी पूजाके लिए कमलोंको लेकर आता हूँ। यह कहकर और अपनी स्त्रीको मुनिके पास बैठाकर वज्रमुष्टि खुश होता हुआ कमलोंको लाने चल दिया। वहींपर छिपा हुआ वह सूरसेन, जिसका कि जिकर ऊपर आ चुका है, बैठा हुआ था। यह सब देखकर वह वज्रमुष्टिके चलेजानेपर मंगीके मनकी परीक्षा करनेको उसके पास आया। नाना प्रकार हाव-भाव, हँसी-विनोदके द्वारा उस धूर्त्तने मंगीके मनको अपनेपर

रिझा लिया । मंगी भी उसपर मोहित होगई । वह बोला—" तुम मुझे यहाँसे कहीं अन्यत्र ले चलो । मैं तुम्हारे साथ चलनेको तैयार हूँ । " सुनकर सूरसेनने उससे कहा–तुम्हारा पति कोई ऐसा वैसा साधारण आदमी नहीं । वह बड़ा ही वीर है । मैं उससे डरता हूँ । इस कारण तुम्हें मैं अपने साथ नहीं लिवा जा सकता । इसपर मंगीने कहा—उससे तुम मत डरो । वह मूर्ख क्या कर सकता है । उसे तो मैं बातकी बातमें मौतके मुँहमें डाल दूँगी । इस प्रकार वे दोनों बातें कर ही रहे थे कि इतनेमें कमल लेकर वज्रमुष्टि भी आगया । अपने हाथकी तलवार मंगीको देकर दोनों हाथोंसे उसने मुनिके पाँवोंपर कमल चढ़ाये । इसके बाद वह मुनिको नमस्कार करनेको झुका । मंगीने तलवार उठाकर उसके गलेपर देमारी। सूरसेनने बड़ी जल्दी झपटकर तलवारके वारको अपने हाथ-पर झेल लिया । उससे उस बेचारेके हाथकी उँगलियाँ कट गईं । वज्रमुष्टि किसी आकस्मिक भयसे मंगीको डरी हुई समझकर बोला–प्रिये, डरो मत । मंगीने तब झूठ-मूठ ही कह दिया नाथ, मैं राक्षससे डर गई थी । सच है माया स्त्रीसे ही उत्पन्न होती है । यह सब लीला देखकर उस चोर सूरसेनको बड़ा ही वैराग्य हुआ । उसने संसारको धिक्कार दिया । उसने विचारा–हाय ! जिसके लिए बड़े बड़े कष्ट उठाये जाते हैं वह स्त्री कितनी ठग, पापिनी और प्राणोंकी

घातक होती है। ऊपरसे तो कैसी सुन्दर? कैसी भोली-भाली? और भीतर देखो तो विष-फलकी तरह जहर-भरी हुई, सदा सन्ताप देनेवाली। वे लोग बड़े ही मूर्ख हैं, अज्ञानी हैं जो इनसे प्यार कर हथिनीपर प्यार करनेवाले हाथीकी तरह दुर्गतिमें जाते हैं। इस दुःख-सागर-संसारमें सर्प-सदृश भयंकर विषयोंसे अब मैं सन्तुष्ट होगया—अब मुझे इनकी जरूरत नहीं। इस प्रकार वह तो विचार ही रहा था कि इतनेमें उसके छहों भाई भी खूब धन-माल चुराकर आगये। उस धनको वे सूरसेनके आगे रखकर बोले—भाई, तुम भी अपना हिस्सा इसमेंसे लेलो। यह देखकर सूरसेनने अपने भाइयोंसे कहा—भाई, मुझे अब धनकी चाह न रही। मैं तो संसारकी भयानक दशा देखकर बड़ा डर गया हूँ, इस कारण अब तप ग्रहण करूँगा। उन सबने तब सूरसेनसे पूछा--भाई, एकाएक ऐसा क्या कारण होगया, जिससे तुम तप लेनेको तैयार होगये। सूरसेनने तब अपनी कटी हुई उँगलियाँ दिखलाकर अपनी और मंगीकी सब बातें उनसे कह दीं। स्त्रीके इस भयंकर चरितको सुनकर यह सब उन्होंने पापका कारण समझा। उन्हें भी उस घटनासे संसार-शरीर-भोगोंमें बड़ा ही वैराग्य होगया। वे सातों भाई तब मोहजालको काटकर और उस सब धन-मालको जीर्ण तृणकी तरह वहीं छोड़कर उन वर-धर्म नाम मुनिके पास गये। बड़ी भक्तिसे उन्होंने उन महान् तपस्वी-रत्न मुनिको प्रणाम किया और दीक्षा लेकर उसी

समय वे सब मुनि होगये। उधर जब यह हाल उनकी स्त्रियोंको ज्ञात हुआ तो वे सब भी जिनदत्ता आर्यिकाके पास जिनदीक्षा ले गईं।

एक दिन वज्रमुष्टिने उन सागर-समान गंभीर, शुद्ध रत्न-त्रयधारी मुनियोंको उज्जैनके जंगलमें तप करते देखकर बड़ी आदर-बुद्धिसे उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद उसने उनसे पूछा--भगवन्, आपकी यह स्वर्गीय सुन्दरता, यह नई जवानी और यह लावण्य! ऐसे समयमें आपने इस कठिन योगको क्यों लिया? सुनकर उन्होंने वह सब हाल वज्रमुष्टिसे कह दिया। उस घटनासे वज्रमुष्टिके मनपर बड़ा असर पड़ा। वह भी उन्हीं वरधर्म मुनिके पास पहुँचा। नमस्कार कर उसने सब परिग्रह छोड़कर दीक्षा ग्रहण करली। निकट-भव्यके तपोलक्ष्मीके समागममें कोई न कोई कारण मिल ही जाता है।

उधर मंगीको भी उन सब आर्यिकाके दर्शन होगये। उन्हें नई उम्रमें ही दीक्षित हुईं देखकर मंगीने उनसे पूछा--देवियो, आपकी यह नई जवानी और यह रूप-सौन्दर्य! इतनी छोटी अवस्थामें आप क्यों साध्वी होगईं? वह सब घटना उन्होंने मंगीसे कह सुनाई, जिस कारण कि उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। सुनकर मंगीको बड़ा वैराग्य हुआ। आत्म निन्दाकर वह भी उसी समय उनके पास दीक्षा ले गई।

इसके बाद वे सुभानु मुनि वगैरह घोर तप कर अन्तमें संन्याससहित मरे । तपके फलसे वे सौधर्म स्वर्गमें त्रायस्त्रिंश जातिके देव हुए। वहाँ उन्होंने दो सागरकी आयु-पर्यन्त खूब दिव्य सुख भोगा ।

धातकीखण्ड-द्वीपके प्रसिद्ध भारतवर्षमें रजताद्रि नाम पर्वत है । उसकी दक्षिणश्रेणीमें नित्यालोक नामकी एक बड़ी सुन्दर नगरी है । उसका राजा चित्रशूल था । उसकी रानीका नाम मनोहरी था । वह सुभानु मुनिका जीव स्वर्गसे आकर इन राजा-रानीके चित्राङ्गद नाम पुत्र हुआ । सुभानुके शेष जो छह भाई थे वे भी इन्हींके पुत्र हुए । उनके नाम थे—गरुड़ध्वज, गरुड़वाहन, मणिचूल, पुष्पचूल, गगननन्दन और गगनचर । वे सातों ही भाई बड़े सुन्दर थे और उनके धन-वैभवका तो कहना ही क्या ।

इसी दक्षिणश्रेणीमें मेघपुरका राजा धनंजय नाम विद्याधर था । उसकी रानी सर्वश्री थी । उसके एक पुत्री हुई । वह बड़ी सुन्दरी और भाग्यवती थी । उसमें अनेक गुण थे । उसका नाम धनश्री था ।

इस रजताद्रिपर्वतमें एक नन्दपुर नाम शहर था । उसका राजा हरिषेण था । उसकी रानी श्रीकान्ता थी । उनके हरिवाहननाम एक पुत्र हुआ । वह धनश्रीका कोई सम्बन्धी था । जब इस धातकीखण्डके भारतवर्षकी अयोध्यामें धनश्रीका स्वयंवर हुआ तब धनश्रीने बड़े प्यारसे वरमाल हरिवाहन-

को ही पहनाई । उस समय अयोध्याका राजा पुष्पदंत चक्रवर्त्ती थी । उसकी रानीका नाम प्रीतिंकरा था । उनके सुदत्त नामका पुत्र था । इस स्वयंवरमें इस पापी, गर्विष्ठ सुदत्तने क्रोधसे धनश्रीको छीन लिया । इस घटनाको देखकर उन चित्राङ्गद वगैरह सातों भाइयोंको बड़ा वैराग्य हुआ । उन्होंने श्रीभूतानन्द नाम तीर्थंकरके पास जाकर जिनदीक्षा ग्रहण करली । अन्तमें वे संन्याससहित मरकर माहेन्द्र नाम चौथे स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए । वहाँ उन्होंने सात सागर तक दिव्य सुखोंको भोगा ।

अपने इस भारतवर्षके कुरुजांगल नाम देशमें हास्तिनापुर जो शहर है, उसमें श्वेतवाहन नाम एक महाजन रहता था। वह बड़ा पुण्यात्मा था । उसकी सेठानीका नाम वन्धुमती था । वह सुभानुका जीव स्वर्गसे आकर इसके शंख नाम जिन-भक्ति-रत पुत्र हुआ । हस्तिनापुरका राजा उस समय गंगदेव था । उसकी रानीका नाम नन्दयशा था । सुभानुके वे शेष छहों भाई इन्हीं राजा-रानीके युगल-पुत्र हुए । उनके नाम थे—गंग और नन्ददेव, खड्गमित्र और नन्द, सुनन्द और नन्दिषेण । रानी नन्दयशाके एकवार फिर गर्भ रहा । न जाने किस कारणसे राजा गंगदेव नन्दयशा पर अबकी वार नाराज होगया । स्वामीको अपनेपर नाराज देखकर नन्दयशाने अपनी धाय रेवतीसे कहा—महाराज आजकल मुझसे कुछ अनमनेसे हो रहे हैं । जान

पड़ता है यह इस गर्भस्थ पुत्रका प्रभाव है । कुछ दिन बाद जब नन्दयशाने पुत्र जना तब धायने उसे लेजाकर बन्धुमती सेठानीको दे दिया । वहाँ वह निर्नामक नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

एक दिन बागमें गंगदेवके छहों लड़के जीम रहे थे। उन्हें खाते हुए देखकर बन्धुमतीके लड़के शंखने निर्नामकसे कहा—तू भी इन लोगोंके साथ खाले । सुनकर निर्नामक उन छहोंके साथ खानेको बैठ गया । यह देखकर नन्द-यशा क्रोधके मारे आगबबूला होगई । उसने आकर बड़े जोरकी एक लात बेचारे निर्नामककी पीठपर जमादी और कहा--यह किसका छोकरा है ? यह देख शंख और निर्नामकको बड़ा ही दुःख हुआ ।

हस्तिनापुरके जंगलमें एक बार द्रुमसेन नाम अवधि-ज्ञानी महामुनि आये । राजा उनके दर्शनोंको गया । शंख और निर्नामक भी गये । वहाँ सबने मुनि द्वारा सुखका कारण धर्मोपदेश सुना । समय पाकर शंख बोला—हे सब जीवोंके हित करनेवाले योगिराज, महारानी नन्दयशाने एक दिन बिना किसी कारणके ही निर्नामकको मारा था और वे सदा इसपर बड़ी ही नाराजसी रहा करती हैं, इसका कारण क्या है ? यह सुनकर अवधिज्ञानी द्रुमसेन मुनि बोले— " सुराष्ट्र देशमें गिरिनगर नामका शहर है । उसका राजा चित्ररथ मांस खानेका बड़ा लोभी था । उसके यहाँ अमृतर-

सायन नामका रसोइया मांस पकानेमें बड़ा होशियार था। राजाने उसके इस गुणपर खुश होकर उसे कोई बारह गाँव जागीरमें दे दिये। एक बार कोई ऐसा योगा-जोग मिला कि गिरिनगरमें सुधर्म नाम मुनि आये। राजा चित्ररथको उनके उपदेश सुननेका मौका मिला। जिनप्रणीत जीव-अजीव आदि तत्वोंको सुनकर उसकी उनपर दृढ़ श्रद्धा जम गई। उसे वहाँ बड़ा वैराग्य हो गया। सो वह अपने मेघरथ पुत्रको राज्यभार सौंपकर सब परिग्रह छोड़कर स्वपरके कल्याणकी इच्छासे मुनि हो गया। उसके पुत्र मेघरथने वहाँ श्रावक-व्रत ग्रहण किये। मेघरथके पिता चित्ररथने जो अपने रसोइयेको बारह गाँव दे रक्खे थे, सो मेघरथने राजा होते ही उससे वे सब गाँव छुड़ाकर सिर्फ एक गाँव उसके पास रहने दिया। इस कारणसे उस पापी रसोइयेने मुनिसे शत्रुता बाँधली। एक दिन मुनि आहारके लिए आये। उस दुष्ट रसोइयेने उन्हें घोषातकी नाम जहरीले फलका आहार दे दिया। उस आहारसे उन रत्नत्रय-धारी मुनिको बड़ा कष्ट हुआ। गिरनार पर्वतपर उन्होंने संन्याससहित प्राण छोड़े। वे अपराजित नाम विमानमें जघन्य आयुके धारक अहमिन्द्र देव हुए। वहाँ उन्होंने खूब सुख भोग किया।

वह रसोइया भी मरकर पापके उदयसे तीसरे नरक गया। वहाँ उसने नाना तरहके कष्टोंको चिरकालतक सहा। वहाँसे बड़े कष्टसे निकलकर अन्य कुगतियोंमें वह भ्रमण करने लगा।

भारतवर्षके मलयदेशमें पलाशकूट नामका एक गाँव था। उसमें यक्षदत्त नाम एक गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम यक्षदत्ता था। वह रसोइयेका जीव कुगतियोंमें बहुत घूम-फिरकर इनके यहाँ यक्ष नाम पुत्र हुआ। थोड़े दिन बाद इनके एक और पुत्र हुआ। उसका नाम यक्षिल था। इनमें बड़ा भाई यक्ष बड़ा ही निर्दयी और पापी था। इस कारण लोग उसे निर्दयी ही कहकर पुकारने लगे। और छोटा भाई यक्षिल बड़ा दयालु था, इस कारण उसे सब दयालु कहा करते थे। एक दिन बरतनोंसे भरी गाड़ीपर बैठे हुए ये दोनों भाई आ रहे थे। रास्तेमें एक सर्प बैठा हुआ था। दयालुके बहुत कुछ रोकने और मना करनेपर भी दुष्ट निर्दयीने उस सर्पके ऊपर गाड़ी चला दी। वह सर्प अकाम-निर्जरासे मरकर श्वेतविका नाम पुरीके राजा वासवके यह नन्दयशा नाम लड़की हुई। उस समय दयालुने अपने भाई निर्दयीको समझाया कि भाई, तुझे ऐसा महापाप करना उचित न था। उस उपदेशका निर्दयीके मनपर भी असर पड़ गया और उससे उसे उपशमसम्यक्त्व प्राप्त हो गया। आयुके अन्त मरकर वह यहाँ निर्नामक हुआ है। पूर्व पापके उदयसे नन्दयशा इसपर क्रोधित रहा करती है।" मुनिके द्वारा इस हालको सुनकर गंगदेव राजा, उनके छहों पुत्र, शंख, निर्नामिक आदिको बड़ा वैराग्य हुआ। वे सब ही दीक्षा लेकर मुनि हो गये। उधर नन्दयशा और उसकी धाय रेवती-

ने भी सुव्रता आर्यिकाके पास संयम ग्रहण कर लिया। इन दोनोंने निदान किया कि तपके प्रभावसे हमें अन्य जन्ममें भी इन पुत्रों और इनके पालन-पोषणका लाभ हो। इसके बाद वे सब ही तप करके पुण्यसे शुक्र नाम स्वर्गमें सामानिक देव हुए। अर्थात् कोई इन्द्रका पिता हुआ, कोई माता हुई, कोई भाई हुआ और कोई गुरु आदि हुए। वहाँ कोई सोलह सागर-पर्यन्त खूब दिव्य सुखोंको भोगकर उनमें जो 'शंख' का जीव स्वर्गमें था वह वहाँसे आकर वसुदेवकी स्त्री रोहिणीके बलदेव नाम सम्यग्दृष्टि पुत्र हुआ है। और जो नन्दयशा थी वह मृगावती देशमें दशार्णपुरके राजा देवसेनकी रानी धनदेवीके तुम निदान-वश देवकी नाम लड़की हुई। तुम्हारा ब्याह वसुदेवसे हुआ। नन्दयशाकी धाय रेवती मलयदेशके भद्रिलपुरमें सुदृष्टि सेठकी स्त्री अलका हुई। वह सदा दान-पूजा-व्रत-उपवास करनेवाली और जिन-भक्ति-रत बड़ी धर्मात्मा हुई। बाकीके जो छहों भाई थे वे स्वर्गसे आकर युगल-रूपसे तुम्हारे पुत्र हुए। वे छहों भाई मोक्ष-गामी हैं, इस कारण एक नैगम नाम देव कंसके भयसे उन्हें जन्म समय ही उठा लेजा कर अलका सेठानीको सौंप आया। उनके नाम हैं—देवदत्त और देवपाल, अनीकदत्त और अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु। वे छहों भाई इसी भवसे मोक्ष जायँगे। इसी कारण वे जवानीमें ही दीक्षा लेकर मुनि हो गये। आहारके लिए वे तुम्हारे घरपर आये थे। उस जन्मा-

न्तरके प्रेमसे उन्हें देखकर तुम्हारे हृदयमें परमानन्द देनेवाला प्रेम उत्पन्न हुआ था।

इसके सिवा जो निर्नामक मुनि थे, तप करते हुए उन्होंने एकबार तीसरे नारायण स्वयंभूके नाना प्रकार छत्र-चँवर आदि वैभवको देखकर निदान किया कि मुझे भी ऐसी सम्पत्ति प्राप्त हो। उसीमें मन रखकर वे मरे भी। तपके फलसे उस समय वे महाशुक्र नाम स्वर्गमें देव हुए। वहाँसे आकर यह नौवें नारायण कृष्ण नाम तुम्हारे पुत्र हुए और कंस तथा जरासंधको मारकर इनने त्रिखण्डेशकी लक्ष्मी प्राप्त की।"

अपने और पुत्रोंके भवोंका हाल सुनकर राजमाता देवकी बड़ी ही प्रसन्न हुईं। उसने बड़ी भक्ति और आनन्दसे श्री-वरदत्त गणधरके चरणोंको प्रणाम किया। और जितने भव्य उस समय वहाँ उपस्थित थे उन सबने भी राजमाता देवकी-के भवोंका हाल सुनकर खूब आनन्द लाभ किया। बड़ी भक्तिसे उन्होंने गणधर देवको सिर झुकाकर वन्दना की।

देवतागण जिनके पाँव पूजते हैं, जो कामरूपी हाथीके दमन करनेको सिंह-सदृश और लोकालोकके जाननेवाले हैं, संसारके नाश करनेवाले और अतुल गुण-रत्नोंके समूह हैं, वे त्रिभुवन-चूड़ामणि नेमिप्रभु भव्यजनको सुख दें।

इति त्रयोदशः सर्गः।

चौदहवाँ अध्याय।

कृष्णकी पट्टरानियोंके पूर्वजन्म।

कृष्णकी पट्टरानी सत्यभामाने भी गणधर भगवानको भक्तिसे नमस्कार कर अपने पूर्वभवोंका हाल पूछा। कृपासिन्धु, जैनतत्वज्ञ वरदत्त गणधर बोले–देवी, सुनिए। मैं सब हाल तुम्हें कहता हूँ।

"शीतलनाथ जिनके बाद जिनधर्मका नाश होजाने पर भद्रिल नाम पुरमें मेघरथ राजा हो चुका है। उसकी रानीका नाम नन्दा था। वहाँ एक भूतिशर्मा ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम कमला था। उनके मुण्डशालायन नाम एक पुत्र हुआ। वह वेदोंका बड़ा भारी विद्वान् होनेपर भी महाकामी और परस्त्री-लंपट था। उस दुर्बुद्धिने कुछ पुस्तकें बनाई। मिथ्यात्वके उदयसे उसने इन पुस्तकोंमें गौ-दान, पृथ्वी-दान, कन्या-दान, सुवर्णदान आदि मिथ्या दानोंकी खूब मनमानी तारीफ की। उन पुस्तकोंको सुनाकर वह मेघरथ राजासे बोला–महाराज, इन दानोंके देनेसे बड़ा ही सुख प्राप्त होता है। हल-मूसल आदिके साथ ब्राह्मणोंको ये दान अवश्य देने चाहिए। देव, इन दानोंसे स्वर्गादिक प्राप्त होते हैं। इन दानोंको छोड़कर तप करना, व्यर्थ शरीरको कष्ट पहुँचाना, भाग्यसे प्राप्त भोगोंको नष्ट करना और संन्याससे

मरकर आत्महत्या करना, है-इन कामोंसे जीवन व्यर्थ ही जाता है और कुछ भी सुख-भोग नहीं किया जा सकता। देव, इनसे हम लोगोंके गो-यज्ञ वगैरह कर्म बड़े ही अच्छे हैं। उनमें पशु मारे जाकर बड़े आनन्दसे उनका मांस खाया जाता है और खूब मनमाना विषय-सुख भोगा जाता है। महाराज, एक सूत्रामणि नाम यज्ञ है । उसमें इच्छाके माफिक शराब भी पी जाती है। माता-बहिन वगैरहका भेदभाव नहीं रक्खा जाता—बड़ी ही स्वच्छन्दता रहती है। उस यज्ञमें अच्छी सिंगार की हुई सुन्दर सुन्दर स्त्रियाँ सपलंग ब्राह्मणोंको दान करना लिखा है। महाराज, ये सब बातें धर्म-प्राप्तिकी कारण बतलाई गई हैं । इस प्रकार मनमाना पापका उपदेश देकर उसने मूर्ख राजा मेघरथ तथा अन्य बहुतसे बुद्धिरहित जनोंको ठगकर उनके द्वारा इन कु-दानों-को करवाया तथा और घर-खेत वगैरह दानमें दिलवाये। वे लोग कालदोषसे उस दुष्टके वचनोंको सत्य समझकर संसार-सागरमें डूबे। उधर वह स्वयं भी मद्य-मांस-परस्त्रीसेवन आदि महा पापोंको जीवनभर करके अन्तमें दुर्ध्यानसे मर-कर सातवें नरक गया। वहाँ उसने छेदन, भेदन, सूलीपर चढ़ना, आरेसे कटना, भाड़में भुनना, कढ़ाईमें तलना, भूखे-प्यासे मरना आदि हजारों दुःखोंको चिरकालतक सहा। परमानन्द देनेवाले जिनवचनोंसे उल्टा चलनेवाला महापापी कौन कौन दुःखोंको नहीं सहता । वहाँसे बड़े कष्टसे निकल-

कर पापके उदयसे कभी कभी वह क्रूर पशु भी हुआ। वहाँसे मरकर फिर नरकमें गया। इस प्रकार उस दुर्बुद्धिने पाप-रत होकर क्रमक्रमसे सभी नरकोंमें भयंकर दुःखोंको भोगा।

गन्धमादन नाम पर्वतसे जो गंधावती नाम प्रसिद्ध नदी निकली है, उसके सुन्दर किनारेपर भल्लूंकि नामका एक पल्ली गाँव था। वह मुण्डशालायन ब्राह्मणका जीव पापके उदयसे इसी गाँवमें काल नामका भील हुआ। इसे एकवार वरधर्म नाम मुनिके दर्शन होगये। इसने नमस्कार कर उनके द्वारा मद्य-मांस-मधु इन तीनोंकी प्रतिज्ञा करली। मरकर यह विज-यार्द्धकी अलकापुरीके राजा पुरुषबलकी रानी ज्योतिर्मालाके हरिबल नाम पुत्र हुआ। व्रतके प्रभावसे यहाँ इसे रूप-सुन्दरता आदि सभी बातें प्राप्त हुईं। एकवार इसने अनन्तवीर्य नाम चारणमुनिकी वन्दना कर उनसे द्रव्य संयम ग्रहण किया। आयुके अन्तमें मरकर यह सौधर्मस्वर्गमें देव हुआ।

रजताद्रि पर्वतपर रथनूपुर नामका शहर है। उसके राजा सुकेतु हैं। वे विद्याधरोंके स्वामी हैं। उनकी रानी स्वयं-प्रभा है। वह हरिबलका जीव सौधर्मस्वर्गसे आकर इन्हीं राजा-रानीके तुम सत्यभामा नाम पुत्री हुई। एक वार तुम्हारे पिताने किसी नैमित्तिकसे पूछा—बतलाओ कि मेरी प्यारी पुत्री किसकी पत्नी होगी? उस बुद्धिमान् निमित्त-ज्ञानीने तब तुम्हारे पितासे कहा—यह भरतके त्रिखण्डेश चक्रवर्त्ती कृष्णकी प्यारी प्रसिद्ध पट्टरानी होगी। उस निमित्त-

ज्ञानीके वचनोंपर तुम्हारे पिताने विश्वास किया। उसके अनुसार ही तुम्हारे पिता सुकेतुने कृष्णके साथ विधिसहित तुम्हारा व्याह कर दिया और तुम उनकी पट्टरानी हुई।” इस प्रकार अपना अन्य जन्मोंका हाल सुनकर सत्यभामा बड़ी प्रसन्न हुई। गुरुओंके कथनको सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होता?”

इसके बाद महारानी रुक्मिणी गणधर भगवानको प्रणाम कर बोली–करुणासिन्धो, मेरे भी भवोंका हाल आप कहिए। गणधरने तब यों कहना आरंभ किया–

“इस सुन्दर जम्बूद्वीपके भारतवर्षमें मगध एक प्रसिद्ध देश है। उसके लक्ष्मी नाम गाँवमें सोम नामका एक धनी ब्राह्मण हो चुका है। उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमति था। वह बड़ी सुन्दरी और सौभाग्यवती थी। पर थी वह अभिमानिनी। एक दिन वह सब सिंगार सजकर अन्तमें केसरकी टींकी लगाकर अपना मुँह काचमें देख रही थी। इतनेमें तपोरत्न समाधिगुप्त नाम मुनि उसके यहाँ आहारके लिए आगये। उन्हें देखकर इस पापिनीने उनकी बड़ी निन्दा की। बे-शर्म नंगा न जाने कहाँसे आगया। कभी नहाता-धोता नहीं। सारा शरीर मैला और महा घिनौना हो रहा है। कभी शरीर पर कोई सुगन्धित वस्तु नहीं लगाता। इस कारण शरीर कैसी बुरी बदबू मार रहा है। कोई पास बैठता तक नहीं–निराधार दुखी हो रहा है। और घर-घरपर भीख माँगता फिरता

है-शर्म भी नहीं आती। इस प्रकार खूब निन्दा कर घिनौनके मारे उसने उल्टी करदी। इस पापके फलसे उसके कोढ़ निकल आया। उसपर बैठती हुई मक्खियोंके काले काले छत्ते पाप-समूहसे जान पड़ते थे। इस कोढ़से उसकी नाक और उँगलियाँ गल गईं। सिरके सब केश खिर गये। शरीरकी दुर्गन्धसे कोई उसे पास न बैठने देता था। आगमें तपाई हुई लोहेकी पुतलीकी तरह वह तीव्र दुःख भोग रही थी। एक क्षणभरमें उसकी सब रूप-सुन्दरता और नई जवानी नष्ट होगई। पापका ऐसा भयानक उदय आया कि उसे माँगनेपर भी कोई रोटीका टुकड़ा न देता था। महान् चारित्रके धारक साधुओंकी निन्दा करनेवाला पापी पुरुष सचमुच बड़ा ही दुःख उठाता है। पापके उदयसे कुत्तीकी तरह दुतकारी हुई लक्ष्मीमति एक टूटे-फूटे झोपड़ेमें रहकर दिन काटने लगी। आखिर वह बड़े ही आर्त्तध्यानसे मरी। मरकर वह अपने ही पतिके घरमें छछूँदरी हुई। एक दिन वह सोमकी छाती परसे दौड़ती हुई जा रही थी। सोमने उसे पूँछ पकड़कर इस जोरसे आँगनमें पटका कि वह तुरत मर गई। मरकर वह इसी गाँवमें गधी हुई। पहले जन्मका जो उसे अभ्याससा पड़ रहा था उससे वह वारवार सोमके घरमें घुसने लगी। विद्यार्थियोंने उसे पत्थर-लकड़ी वगैरहसे मार मारकर उसका एक पाँव ही तोड़ डाला। वह बड़ी दुखी हो गई। एकवार वह जाती हुई कुएमें गिर पड़ी। बड़े कष्टसे उसने वहाँ प्राण छोड़े। वह फिर सूअर हुआ। उसे निर्दयी कुत्तोंने खालिया।

मंदिर नाम गाँवमें मत्स्य नामका एक कहार रहता था। उसकी स्त्रीका नाम मंडूका था। वह ब्राह्मणीका जीव सूअरके भवसे मरकर इसी मंडूकाके दुर्गन्धा नाम लड़की हुई। लोग इसे पापके उदयसे पूतिका नामसे पुकारने लगे। इसे पैदा होनेके बाद कुछ ही दिनोंमें इसके माता-पिता भी मर गये। तब इसकी आजीने बड़े कष्टसे इसे पाला-पोसा। धीरे धीरे यह समझदार होगई।

विचिकित्स्या नाम नदीके किनारे एकदिन वे ही समाधि-गुप्ति मुनि कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे। काललब्धिसे पूतिकाने उन्हें देखा। प्रणाम कर वह उनके पास शान्त-मन होकर खड़ी रही और मुनिको जो डाँस-मच्छर काट रहे थे उन्हें अपने कपड़ेसे दया कर उड़ाने लगी। इसी तरह सारी रात बीत गई। सवेरे जब ध्यान पूरा कर जैनतत्वज्ञ मुनिराज बैठे तब पूतिका भी उनके सुख देनेवाले चरणोंके पास बैठ गई। मुनिने उसे धर्मोपदेश दिया। वे बोले—जिस धर्मका जिनभगवान्‌ने उपदेश किया, उसका मूल जीवदया है। वह सत्य-शौच-पवित्रता-संयम आदि गुणोंसे युक्त है। स्वर्ग-मोक्षका कारण है। उसे देवतागण पूजा करते हैं। तू उसे धारण कर। पूतिकाने पवित्र धर्मका उपदेश तथा अपने दुःख-पूर्ण भवान्तरोंको सुनकर मद्य-मांस-मधु और पाँच उदुम्बर फलका त्याग कर अणुव्रतोंको धारण कर लिया।

इस प्रकार व्रत ग्रहण करके पूतिका उन सुखके कारण मुनिको बड़े विनयसे नमस्कार कर चली गई।

एक दिन कुछ आर्यिकाओंका संघ तीर्थयात्राके लिए जा रहा था। पूतिका भी उसके साथ होगई। उसके साथ साथ अन्य गाँवोंमें घूमती-फिरती अपने व्रतोंका यह पालन करने लगी। उस संघके आश्रयमें इसे भोजन वगैरहका कभी कोई कष्ट न हुआ। जो कुछ प्रासुक खानेको मिलता उसे खाकर यह रह जाती थी। इस प्रकार सुखसे यह अनेक जगह जिनवन्दना करती हुई एकवार किसी पर्वतकी गुहामें जाकर ठहरी और व्रत-उपवास करने लगी। वहाँ इसे एक पूर्वजन्मकी बड़ी प्यारी सखीका समागम होगया। उसने इसकी बड़ी तारीफ की। अन्तसमय पूतिका संन्याससे प्राणों को छोड़कर अच्युतेन्द्रकी देवाङ्गना हुई। वहाँ यह ५५ पल्य-तक खूब सुख भोगती रही।

विदर्भदेशमें जो सुन्दर कुण्डलपुर है, उसके राजा वासव हैं। उनकी रानीका नाम श्रीमती है। पुण्यसे वह पूतिकाका जीव स्वर्गसे आकर इन्हीं राजा-रानीके तुम रुक्मिणी नाम प्रसिद्ध सौभाग्यवती और सुन्दरी पुत्री हुई हो।

मंगल नाम नगरीका राजा भेषज था। उसकी रानी मद्री बड़ी गुणवती थी। उनके जो शिशुपाल नाम लड़का हुआ उसके तीन नेत्र थे। भेषजको उसके ललाटपर तीसरा नेत्र देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। राजाने निमित्त-

ज्ञानीको बुलाकर पूछा—शिशुपालके इस तीसरे नेत्रका फल क्या है ? वह बोला—जिसे देखकर इसका यह नेत्र नष्ट होगा वही इसे मार डालेगा। एकदिन राजा भेषज अपनी रानी, पुत्र वगैरहके साथ कृष्णके देखनेको द्वारिका गया। वहाँ कृष्णको देखते ही शिशुपालका वह नेत्र नष्ट होगया। यह देख मद्री बड़ी चिन्तातुर हुई। उसने तब हाथ जोड़कर कृष्णसे कहा—प्रभो, मुझे पुत्रकी भीख दीजिए। उत्तरमें कृष्णने कहा—माता, शिशुपालके सौ अपराधतक उसे किसी प्रकारका भय नहीं है। कृष्णसे यह वर लाभ कर भेषज राजा वगैरह अपनी राजधानीमें लौट आये।

शिशुपाल बालपनसे ही बड़ा प्रतापी था। उसने अनेक राजोंको जीतकर अपना बल और भी खूब बढ़ा लिया। इसके बाद उसकी महात्वाकांक्षा यहाँतक बढ़ गई कि वह कृष्णको जीतकर त्रिखण्डेश बननेकी इच्छा करने लगा। तैल न रहनेसे बुझते हुए प्रदीपकी शिखा जैसे कुछ देरके लिए तेज हो उठती है उसी तरह शिशुपाल भी पापसे बड़ा गर्विष्ठ होगया। इस तरह कुछ समय बीतने पर, पुत्री, तेरे पिता वासवराजने तेरा ब्याह शिशुपालके साथ कर देनेका विचार किया। यह सब देख-सुनकर झगड़ेखोर नारदने जाकर कृष्णसे कहा—प्रभो, विदर्भदेशमें कुण्डलपुरके राजा वासवके रुक्मिणी नामकी एक बड़ी ही सुन्दरी लड़की है। मैं उसके सम्बन्धमें ज्यादा क्या कहूँ, वह एक दूसरी देव-

कुमारी है। प्रभो, सच पूछो तो वह आपहीके योग्य है। अन्यके योग्य नहीं। क्योंकि मुकुट सिरपर ही शोभा देता है—पावोंमें नहीं। बुद्धिहीन, रुक्मिणीका पिता उसे मूर्ख शिशुपालको ब्याहना चाहता है। भला इससे बढ़कर और अन्याय क्या हो सकता है? कहीं बुद्धिमान् जन अपने तेजसे सब ओर प्रकाश फैलानेवाली मोतियोंकी मालाको बन्दरके गलेमें पहराते हैं? झगड़ेके मूल नारद द्वारा यह सब हाल सुनकर फिर कृष्णकी क्या पूछो; ये क्रोधके मारे जल उठे। उसी समय इन्होंने अपनी सब सेनाको लेकर शिशुपालपर चढ़ाई करदी। कृष्णने शिशुपालके कोई सौ अपराधको सह लिया, पर जब वह बहुत ही उद्धत होने लगा तब कृष्णको उसका दमन करना ही पड़ा। इस तरह उसे मारकर कृष्णने तुम्हारे साथ ब्याह किया और बड़े आनन्द उत्सवसे तुम्हें अपनी पट्टरानी बनाया। यह जानकर हे पुत्री, कभी रत्नत्रय पवित्र साधुओंकी निन्दा न करनी चाहिए।" इस प्रकार वरदत्त गणधर द्वारा अपना पूर्वभवका हाल सुनकर रुक्मिणी बड़ी सन्तुष्ट हुई।

इसके बाद कृष्णकी तीसरी पट्टरानी जाम्बवती गणधरको प्रणाम कर बोली—नाथ, मेरे भी पूरब जन्मका हाल कहनेकी कृपा करें। सुनकर गणधरदेवने यों कहना शुरू किया—

"इस मनोहर जम्बूद्वीपमें मेरुके पूर्वविदेहमें पुष्कलावती नाम एक देश है। उसके वीतशोक नाम पुरमें एक दमक

नामका महाजन हो चुका है। पुण्यसे उसे धन-दौलत, कुटुम्ब-परिवार आदिका सभी सुख प्राप्त था। उसकी स्त्री देवमती थी। इनके देविला नाम एक लड़की थी। उसकी शादी किसी वसुमित्र नाम धनिकके लड़केके साथ की गई थी। कर्मोंके उदयसे वह विधवा हो गई। संसार-देह-भोगोंसे वैराग्य हो जानेसे उसने जिनदेव नाम मुनिके पास दीक्षा ग्रहण करली। तप करके अन्तमें वह मरकर मेरुपर्वतके नन्दन वनमें व्यंतरदेवी हुई। वह बड़ी रूपवती थी। वहाँ वह ८४ हजार वर्ष सुख भोगती रही।

पुष्कलावती देशमें विजयपुर नाम एक शहर है। वहाँ मधुषेण नाम एक महाजन रहता था। उसकी स्त्री बन्धुमती थी। वह व्यन्तरीका जीव वहाँसे आकर इनके यहाँ बन्धुयशा नाम बड़ी खूबसूरत कन्या हुई। वह अपनी प्रियसखी जिनदेव सेठकी लड़की जिनदत्ताके साथ खूब व्रत-उपवासादि तपकर अन्तमें संन्याससे मरकर सौधर्मस्वर्गमें कुबेरकी देवाङ्गना हुई। वहाँकी आयु पूरी कर वह पुण्डरीकिणी नगरीमें वज्र नाम महाजनकी स्त्री सुभद्राके सुमति नाम लड़की हुई।

एकदिन सुव्रता आर्यिका उसके घर आहारके लिए आई। सुमतिने नौ-भक्तिके साथ उसे सुखका कारण पवित्र आहार कराया। आर्यिकाने उसे रत्नावली नाम व्रत करनेको कहा। सुमतिने उस व्रतको किया। अन्तमें वह मरकर

पुण्यसे ब्रह्मस्वर्गमें देवी हुई । वहाँ वह चिरकालतक सुख भोगती रही ।

अपने इस भारतवर्षके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर-श्रेणीमें जो जांबव नाम शहर है, उसके राजा भी जांबव विद्याधर हैं । उनकी रानी जम्बूषेणा है । वह सुमतिका जीव ब्रह्म-स्वर्गसे आकर इन्हीं राजा-रानीके तुम जाम्बवती नाम बड़ी सुन्दर लड़की हुई ।

पवनवेग विद्याधरकी श्यामला नाम स्त्रीके नमि नाम एक पुत्र था । सम्बन्धमें वह तुम्हारे मामाका लड़का भाई था । एक दिन वह ज्योतिं नाम बागमें जाकर तुम्हारे पितासे बोला— मामाजी, जाम्बवतीका ब्याह आप मेरे साथ कर दीजिए । और यदि आप ऐसा न करेंगे तो मैं जबरन जाम्बवतीको छीनकर ले-उड़ूँगा । सुनकर तेरे पिताको बड़ा क्रोध आया । उन्होंने तब अपनी विद्याके बलसे जहरीली मक्खियोंको नमिके काटनेको उड़ाया । किन्नर नाम शहरका राजा यक्ष-माली विद्याधर भी नमिका मामा था । वह नमिपर बड़ा प्यार करता था । उस समय उसने आकर नमिको उन म-क्खियोंसे बचाकर तुम्हारे पिताकी विद्याको नष्ट कर दिया । यह सुनकर तुम्हारा भाई जम्बूकुमार समुद्र-समान गर्जता हुआ आया और यक्षमालीकी विद्याको उसने काट डाला । जम्बूकुमारके द्वारा इस प्रकार अपमानित होकर यक्षमाली सूर्योदयसे नष्ट हुए अन्धकार की तरह डरकर न जाने कहाँ

भाग गया। झगडालु नारदने यहाँका भी सब हाल देख-सुन-कर कृष्णसे जाकर कहा—धराधीश दामोदर, तुम्हारे लिए मैं एक बड़े अच्छे समाचार लाया हूँ। वह यह कि जांबव नगरके जो विद्याधर जांबवराज और जम्बूषेणा महारानी हैं, उनके जाम्बवती नाम देवाङ्गनासी सुन्दरी लड़की है। उसका वह अलौकिक रूप नेत्रोंको बड़ा ही आनन्दित करता है। प्रभो, वह राजकुमारी आपहीके योग्य है। नारद द्वारा यह हाल सुनकर तुमपर मोहित हुए कृष्णने उसी समय विजयार्द्धपर डेरा जा लगाया। तुम्हारे पिता भी कोई साधा-रण मनुष्य न थे जो कृष्ण उनपर झटसे विजय पा-लेते। कृष्णने उनका सहसा जीतलेना कठिन समझकर एक दूसरी युक्ति की। वे उपवासकी प्रतिज्ञा कर रातमें कुशासनपर विद्या साधनेको बैठे। कृष्णका यक्षिल उर्फ दयालु नामका एक पूर्वज-न्मका भाई जिनप्रणीत, स्वर्गमोक्षका साधन तपकर महाशुक्र नाम स्वर्गमें बड़ा वैभवशाली देव हुआ था। पूर्वजन्मके स्नेहवश वह कृष्णको विद्या-साधनकी विधि बतलाकर अपने स्थान चला गया। कृष्ण इससे बड़े सन्तुष्ट हुए। इसके बाद उन्होंने उस देवकी बताई विधिके अनुसार मंत्र द्वारा एक बड़ा भारी तालाब बनाया। उसमें सर्प सेजपर बैठकर फिर उनने कोई चार महीने तक ‘सिंहवाहिनी’ और ‘गरुड़-वाहिनी’ नाम दो विद्याओंकी साधना की। सब कार्योंको सिद्ध करदेनेवाली वे दोनों ही विद्यायें कृष्णको

सिद्ध होगईं । कृष्णने उन विद्याओंपर चढ़कर रणभूमिमें जांबवराजके साथ युद्ध किया और युद्धमें जय भी कृष्णहीकी हुई । पुत्री, इसके बाद कृष्ण बड़े सत्कारके साथ तुम्हें अपनी राजधानीमें लाकर महादेवीके श्रेष्ठ पदपर नियुक्त किया । पूर्व पुण्यसे जीवोंको क्या प्राप्त नहीं होता ? " जाम्ब-वती गणधर द्वारा अपना सब हाल सुनकर बड़ी सन्तुष्ट हुई । मानों जैसा उसने सब हाल अपनी आँखों ही देखा हो । उसने तब बड़ी भक्तिसे गणधर भगवान्‌को प्रणाम किया ।

इसके बाद कृष्णकी सुसीमा रानी उन्हें नमस्कार कर बोली–प्रभो, मेरे भी पूर्व भवोंका हाल कहिए । परोपकार-रत गणधर बोले–" धातकीखण्ड द्वीपकी पूरब दिशामें मंग-लावती देशमें रत्नसंचय नाम श्रेष्ठ नगर है । उसके राजा विश्वदेव थे । उनकी रानीका नाम अनुंधरी था । अयोध्याके राजाके साथ विश्वदेवका एकवार युद्ध हुआ । उसमें विश्व-देव मारे गये । मंत्रियों वगैरहके मना करनेपर भी मोहकी मारी विश्वदेवकी रानी आगमें जलकर सती होगई । वह मरकर अपने कर्मोंके अनुसार विजयार्द्ध पर्वतपर व्यन्तरदेवी हुई । वहाँ उसने दस हजार वर्षकी आयु पाई । उतनी आयु पूरीकर वह वहाँसे भी मरी ।

इस जम्बूद्वीपके भारतवर्षमें एक शालि नाम गाँव था । उसमें यक्ष नामका एक गृहस्थ रहता था । उसकी स्त्री देवसेना थी । वह व्यन्तरीका जीव मरकर इनके यक्षदेवी नाम लड़की

हुई। एक दिन इसके घरपर महीनाके उपवासे धर्मसेनमुनि आहारके लिए आये। यक्षदेवीने बड़ी भक्तिसे उन्हें पवित्र आहार कराया। इसके बाद उसने उन गुणगुरु मुनिराजको नमस्कार कर उनके द्वारा कुछ सुखके कारण व्रत ग्रहण किये।

एक दिन यक्षदेवी जंगलमें क्रीड़ा करनेको गई हुई थी। इतनेमें घनघोर बादलोंसे आकाश घिर गया। बिजलियाँ कड़कने लगीं। यक्षदेवी बेचारी डरकर भागी और जाकर एक पर्वतकी गुफामें घुस गई। उस गुफामें एक महा भयंकर अजगर रहता था। उसने यक्षदेवीको काट लिया। मरकर वह दानके पुण्यसे मध्यम भोगभूमिके हरिवर्ष नाम क्षेत्रमें पैदा हुई। वहाँ उसने भोगभूमिके उत्तम उत्तम सुखोंको आयुपर्यन्त भोगा। वहाँकी आयु पूरी कर वह भवनवासी देवोंके स्थानमें नागकुमारकी देवी हुई।

जम्बूद्वीपमें महा मेरुकी पूरब दिशामें जो मनोहर पुष्कलावती देश है, श्रेष्ठ सम्पदाके घर उस देशमें पुण्डरीकिणी नाम नगरी है। उसके राजाका नाम अशोक है। उनकी रानी सोमश्री है। वह नागकुमारदेवीका जीव वहाँ अपनी आयु पूरी कर इन राजा-रानीके सुकान्ता नाम लड़की हुई। वह वैराग्य होजानेसे जिनदत्ता आर्यिकाके पास दीक्षा लेगई। उसने कनकावली व्रत कर खूब तपस्या की। अन्तमें संन्यास-

सहित मरकर वह माहेन्द्र नाम स्वर्गमें देवाङ्गना हुई। । वह पञ्चेन्द्रियोंके योग्य उत्तम उत्तम भोग भोगती रही ।

इस सुन्दर भारतवर्षमें सुराष्ट्र देशके जो गुणशाली वर्द्धन नाम राजा है, उनकी रानीका नाम ज्येष्ठा है । वह सुकान्ताका जीव स्वर्गसे आकर इन राजा-रानीके तुम सुसीमा नाम गुणोज्ज्वल पुत्री हुई हो । इस समय तुम कृष्णकी महारानी होकर बड़ा सुख भोग रही हो । जिनधर्मके प्रसादसे सब कुछ प्राप्त हो सकता है । " इस प्रकार आनन्दित करनेवाला अपना हाल सुनकर सुसीमा बड़ी प्रसन्न हुई ।

इसके बाद कृष्णकी पाँचवीं पट्टराणी लक्ष्मणाने गंभीरमना, गणधर भगवान्को भक्तिसे नमस्कार कर अपने भवोंका हाल पूछा । करुणासे सहृदय गणधरदेव बोले—

" जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें जो पुष्कलावती देश है, उसके अरिष्ट-पुरके राजा वासव थे। उनकी रानीका नाम वसुमती था। उनका पुत्र सुषेण बड़ा गुणवान् था। एकवार कोई ऐसा कारण बन गया जो वासवराज सागरसेन मुनिके पास दीक्षा लेकर मुनि होगये । सत्य है संसारसे डरे हुए गुणशाली भव्यजनोंको धन-सम्पदाके छोड़नेमें कोई न कोई कारण मिल ही जाता है । उनकी रानी वसुमती पुत्र-मोहसे घरहीमें रह गई । राजाके मरे बाद उसके कोई ऐसा पापका उदय आया कि जिससे वह दुराचार-रत होगई। मरकर इस पापसे वह जंगलमें भीलिनी हुई। एकवार उस जंगलमें कामजयी, चारण

ऋद्धिधारी नन्दिवर्धन नाम मुनिके उसे दर्शन होगये। भीलिनीने बड़े भावोंसे उन मुनिकी वन्दना कर उनके द्वारा श्रावकोंके व्रत ग्रहण कर लिये । आयुके अन्त मरकर वह व्रतके प्रभावसे आठवें स्वर्गके इन्द्रकी नाचनारी हुई। अपनी खूबसूरतीसे वह देवोंके मोहित करनेकी एक औषधि थी।

इस भारतवर्षके विजयार्द्धपर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें चन्द्रपुर नाम जो प्रसिद्ध शहर है, उसके राजा महेन्द्र थे। उनकी रानीका नाम अनुंधरी था। वह भीलिनीका जीव स्वर्गसे आकर इन्हीं राजा-रानीके कनकमाला नाम पुत्री हुई। उसे विद्या सिद्ध थी। उसका जब स्वयंवर हुआ तब उसने हरिवाहन नाम राजकुमारको बड़े प्रेमसे वरमाला पहराई।

एक दिन कनकमाला जिनभवनोंसे सुन्दर सिद्धकूट चैत्यालयकी यात्रा करनेको गई। वहाँ श्रीयमधर मुनिकी भक्तिसे वन्दना कर उसने अपने भवोंका हाल सुना। मुनिने उससे मुक्तावली नाम व्रत करनेको कहा। उसने उस व्रतका पालन कर अन्तमें समाधिसे प्राणोंको छोड़ा। मरकर वह पुण्यसे सनत्कुमार इन्द्रकी इन्द्राणी हुई। वहाँ वह नव पल्यतक दिव्य सुखोंको भोगती रही। स्वर्गसे आकर वह भारतवर्षके सुप्रकार पुर नाम शहरके राजा शंवरकी रानी ह्रीमतीके तुम लक्ष्मणा नाम अनेक लक्षणोंकी धारक पुत्री हुई। तुम्हारे जो श्रीपद्म और ध्रुवसेन नाम दो बड़े भाई हैं, गुणोंमें उनसे तुम बड़ी हो। जिनवचनोंपर तुम्हें बड़ा विश्वास है। किसी

पवनवेग नामके विद्याधरने तुम्हारी त्रिभुवन-श्रेष्ठ सुन्दरताकी कृष्णसे जाकर तारीफ की। कृष्णने उसके द्वारा सब बातें सुनकर उसीको तुम्हें लानेको भेजा। लाकर उसने बड़े ठाट-बाटसे तुम्हारा व्याह कृष्णसे कर दिया। इसके बाद कृष्णने तुम्हें पट्टरानीके महा पदपर नियुक्त किया। देवी, पुण्यसे क्या नहीं होता।" लक्ष्मणा अपना हाल सुनकर बड़ी आनन्दित हुई। उसने फिर गणधर भगवानके चरणोंको नमस्कार किया।

इसके बाद कृष्ण गणधरसे बोले—हे करुणासिन्धो, हे निर्मल गुणोंके मन्दिर, अब आप गौरी, गान्धारी और पद्मावतीके भवोंको और कह दीजिए। सुनकर गणधरने पहले गान्धारीका हाल कहना शुरू किया। वे बोले—"इस जम्बूद्वीपमें जो सुकोसल नाम सब श्रेष्ठ सम्पदासे भरा-पुरा देश है, उसकी राजधानी अयोध्याके राजाका नाम रुद्र था। उनकी गुणवती रानीका नाम विनयश्री था। दान-पूजा-व्रत-उपवासादि पर उसका बड़ा प्रेम था। पुण्यसे उसने एकबार सिद्धार्थवनमें बुद्धार्थ मुनिको भक्तिसे आहार कराया। उस दानके फलसे वह मरकर देव कुरु भोगभूमिमें उत्पन्न हुई। चिरकाल वहाँ सुख भोगकर वह ज्योतिर्लोकमें चन्द्रकी चन्द्रवती नाम स्त्री हुई।

जम्बूद्वीपके विजयार्द्धपर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें गगनवल्लभ एक शहर है। उसके राजा विद्युद्वेग थे और उनकी रानीका नाम

विद्युद्वेगा था। वह चन्द्रवतीका जीव ज्योतिर्लोकसे आकर इन राजा-रानीके सुरूपा नाम पुत्री हुई। इसका व्याह विद्या-पराक्रम आदि गुणोंके धारक नित्यालोक पुरके राजा महेन्द्रविक्रमके साथ हुआ। एक दिन ये दोनों पति-पत्नी मेरुपर्वतके चैत्यालयोंकी यात्रा करनेको गये। वहाँ विनीत नाम एक पवित्र चारण-मुनि विराजे हुए थे। प्रणाम कर इन्होंने उनके द्वारा धर्मका उपदेश सुना। उससे महेन्द्र-विक्रमको बड़ा वैराग्य हुआ और आखिर वह दीक्षा लेकर मुनि होगया। सुरूपा भी फिर सुभद्रा आर्यिकाके पास दीक्षा-लेकर साध्वी होगई। तप करके आयुके अन्तमें संन्यास-मरण कर वह सौधर्मस्वर्गमें देवी हुई। वहाँ एक पल्य-पर्यन्त वह सुख भोगती रही।

इस पवित्र भारतवर्षमें गंधार देशमें जो पुष्कलावती नाम शहर है, उसके राजाका नाम इन्द्रगिरि है। उनकी रानीका मेरुमती है। वह सुरूपाका जीव सौधर्मस्वर्गसे आकर इन राजा-रानीके गान्धारी नाम यह श्रेष्ठ सौभाग्यकी धारक पुत्री हुई। इसके पिताने इसका व्याह अपने किसी भानजेके साथ कर देना निश्चय किया था। नारदने यह हाल तुमसे आकर कहा। नारदकी बातें सुनकर गान्धारीपर मोहित हुए तुमने सेना लेकर इन्द्रगिरिपर चढ़ाई करदी और युद्धमें उन्हें हराकर गांधारीको तुम ले आये। इसके बाद तुमने पट्टरानीके पद पर नियुक्त कर इसका मान बढ़ाया।"

कृष्ण, अब गौरीका हाल सुनो। "इसी जम्बूद्वीपमें नगपुर नाम जो बड़ा भारी शहर था, उसके राजा हेमाभ थे। उनकी रानीका नाम यशस्वती था। सुन्दरता-सौभाग्य-लावण्य-पुण्य आदि रत्नोंकी वह पृथ्वी थी। उसे एकवार यशोधर नाम आकाशचारी मुनिके दर्शन करनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान होगया। उसके पतिके पूछनेपर वह बोली—"धातकीखण्डद्वीपके मेरुकी पश्चिमदिशामें विशाल विदेहदेशमें शोकपुर नाम नगर था। उसमें आनन्द नाम एक महाजन रहता था। उसकी स्त्रीका नाम नन्दयशा था। एकदिन नन्दयशाने अमितसागरमुनिको बड़ी भक्तिसे आहार कराया। दानके प्रभावसे उसके घरपर पञ्चाश्चर्य हुए। आयुके अन्त वह साध्वी मरकर पुण्यसे उत्तरकुरु भोगभूमिमें उत्पन्न हुई। वहाँकी आयु पूर्णकर वह भवनवासी इन्द्रकी देवाङ्गना हुई। वहाँसे आकर वह केदारपुरके राजाकी लड़की मैं यशस्वती हुई। पूर्व पुण्यसे पिताजीने मेरा व्याह आपसे कर दिया।" अपनी स्त्रीका हाल सुन हेमाभ बड़ा सन्तुष्ट हुआ। इसके बाद एकवार कमललोचनी यशस्वतीने सिद्धार्थवनमें सागरदत्त मुनिकी वन्दना कर उनके उपदेशसे कुछ व्रत-उपवास लिये। तप करके आयुके अन्त मरकर वह सौधर्मस्वर्गमें देवी हुई। वहाँ वह बहुत कालतक सुख भोगती रही।

इस जम्बूद्वीपकी कौशाम्बी नगरीमें सुमति नाम एक बड़ा भारी धनी सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था।

वह यशस्वतीका जीव सौधर्मस्वर्गसे आकर इन सेठ-सेठानीके धार्मिकी नाम धर्म-कर्म-रत पुत्री हुई। धार्मिकीने जिनमती आर्यिकाके पास जिनगुणसम्पत्ति नाम व्रत लिया। आयुके अन्त मरकर वह व्रत-प्रभावसे शुक्रस्वर्गमें देवाङ्गना हुई। वहाँ उसने बहुत कालतक दिव्य सुखोंको भोगा। वहाँसे आकर वह इस भारतमें वीतशोक नाम पुरके राजा मेरुचन्द्रकी रानी चन्द्रवतीके प्रसिद्ध सुन्दरता आदि गुणोंकी धारक यह गौरी नाम पुत्री हुई। विजयपुरके राजा विजयनन्दनने फिर लाकर बड़े ठाट-बाटसे इसका ब्याह तुम्हारे साथ कर दिया। तुमने इसे पट्टरानीके उच्च पदपर नियुक्त किया।"

कृष्ण, सुनिए। अब तुम्हें पद्मावती महादेवीके भवोंका हाल कहा जाता है। यह कहकर गणधर बोले–"उज्जैनके राजा विजयकी रानीका नाम अपराजिता था। उसके विजयश्री नाम लड़की हुई। वह बड़े उज्ज्वल गुणोंकी धारक थी। सत्य-शील-दान-पूजा-व्रतरूपी पवित्र जल-प्रवाह द्वारा उसने मनका सब मैल धो डाला था–उसका हृदय बड़ा पवित्र था। हस्तशीर्ष नाम शहरके राजा बुद्धिमान् हरिषेणके साथ उसका बड़े राजसी ठाट-बाट और विधिसहित ब्याह हुआ।

एकदिन विजयश्रीने तपस्वी समाधिगुप्त मुनिको बड़ी भक्तिसे आहार कराया। आयुके अन्त मरकर वह दानके प्रभावसे हैमवत नाम जघन्य भोगभूमिमें जाकर पैदा हुई। वहाँ उसने बहुत कालतक इच्छित सुखोंको भोगा। वहाँसे

मरकर वह चन्द्रमाकी रोहिणी नाम प्रिया हुई । वहाँ उसने एक पल्यतक सुख भोगा । वहाँसे आकर वह मगधदेशमें शाल्मलि गाँवके निवासी किसानोंके पटेल विजयदेवकी स्त्री देविलाके पद्मावती नाम लड़की हुई । उसने फिर वरधर्म मुनिकी वन्दना कर उनके द्वारा अजाने फलके न खानेका व्रत लिया । एकदिन पापी भीलोंने आकर शाल्मलि गाँवमें खूब लूट-खोंस की और लोगोंको बे-तरह मारा । बहुतसे लोग गाँव छोड़-छोड़कर घने जंगलमें भाग गये । बे-चारोंके पास वहाँ खानेको कुछ न था, सो भूखके मारे वे बड़ा कष्ट पाने लगे । उन्होंने भूख न सह सकनेके कारण विषवेलके फलोंको ही खालिया । उससे वे सब मर मिटे । उन लोगोंमें पद्मावती भी थी । पर उसने उन फलोंको न खाया । कारण अनजान फल खानेकी वह प्रतिज्ञा ले चुकी थी। सो वह वैसे ही भूखके मारे मर गई । सत्य है जो धीर लोग अपने व्रत पालनेमें दृढ़ मन रहते हैं वे प्राण जानेपर भी कभी व्रतको नहीं छोड़ते । पद्मावती इस व्रतके प्रभावसे मरकर हेमवतकी जघन्य भोगभूमिमें जाकर उत्पन्न हुई । वहाँ उसने एक पल्यतक सुखोंको भोगा । वहाँसे आकर वह स्वयंप्रभ नाम देवकी स्वयंप्रभ-द्वीपमें स्वयंप्रभा नाम बड़ी सुन्दर देवाङ्गना हुई । वहाँसे वह इस भारतमें जयन्तपुरके राजा श्रीधरकी रानी श्रीमतीके विमलश्री नाम लड़की हुई । उसका व्याह भद्रिलपुरके राजा मेघनादके साथ हुआ । वहाँ वह बड़े

सुखके साथ रही। एकदिन बुद्धिमान् मेघनादने धर्म नामक मुनिराजसे जिनप्रणीत पवित्र धर्मका उपदेश सुना। उससे उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ। वे सब राज-काज छोड़कर मुनि होगये। तप करके आयुके अन्त वे संन्यास मरण कर पुण्यसे सहस्रारस्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए। इधर उनकी रानी विमलश्रीने भी पद्मावती नाम आर्यिकाके पास जिनदीक्षा ग्रहण करली। वह आचाम्लवर्द्धमान नाम दुःसह तप कर उसी सहस्रारस्वर्गमें मेघनादके जीव महर्द्धिक देवकी देवाङ्गना हुई। वहाँ वह बहुत कालतक सुखोंको भोगती रही। वहाँसे आकर वह इस भारतवर्षमें अरिष्टपुरके राजा हरिवर्माकी रानी श्रीमतीके वह पद्मावती नाम श्रेष्ठ रूप-सुन्दरता, सौभाग्य आदि गुण-रत्नोंकी धारक पुत्री हुई। स्वयंवरमें इसने रत्नमालाके द्वारा तुम सदृश त्रिखण्डेशको भी अपने वश कर लिया। तुमने फिर कृष्ण, इस पवित्र जिन-भक्तिरत देवीको मान देकर इसे अपनी प्रधान रानी बनाया।"

इस प्रकार गणधरके मुख-कमलसे अपनी रानियोंका हाल सुनकर श्रीकृष्ण बड़े ही सन्तुष्ट हुए। उनकी सब रानियाँ भी अपना अपना हाल सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं। बड़ी भक्तिसे उन सबने गणधर भगवान्‌को नमस्कार किया। इनके सिवा वहाँ और जितने धर्मात्मा जन बैठे हुए थे वे भी इस धर्मामृतको पीकर बड़े सन्तुष्ट हुए। जिनधर्मको वे अब और

अधिक भक्तिके साथ पालने लगे। जहाँ गणधर-सदृश कृपा-सिन्धु महाज्ञानी स्वयं वक्ता हो वहाँ कौन धार्मिक न हो जायगा?

जिनकी देवोंके इन्द्र, चक्रवर्ती, चाँद-सूरज, विद्याधरों और राजों-महाराजों-ने बड़ी भक्तिसे पूजा की, जो भव्य जनोंको भव-समुद्रसे पार करनेमें एक दृढ़ जहाज-सदृश और गुणनिधि हैं वे त्रिलोक-चूड़ामणि नेमिजिन दोनों लोकमें सुख दें।

इति चतुर्दशः सर्गः।

पन्द्रहवाँ अध्याय।

प्रद्युम्नका हरण, विद्यालाभ और मातृ-समागम।

बलदेवने लोक श्रेष्ठ गणधर भगवानको भक्तिसे प्रणाम कर प्रद्युम्न और शंभुकुमारकी भवान्तर-कथा सुननेकी इच्छा प्रगट की। वह इसलिए कि त्रिजगद्गुरुकी सभामें बैठे हुए अन्य भव्यजनोंके मनपर उन दोनोंके गुणोंका प्रकाश पड़े। सुनकर जग-हितकर्त्ता गणधर भगवान् बोले—"राजन्, मिथ्यात्वके पापसे संसारमें रुलते हुए जीवोंके अनन्त जन्म बीत गये। उन दुःखरूप जन्मोंसे कुछ लाभ नहीं। परन्तु जिन्होंने जिनप्रणीत धर्मलाभसे अपना जन्म पवित्र किया उनके जन्मका हाल मैं तुमसे कहता हूँ। सुनिए।

इस जम्बूद्वीपके भारतवर्षमें जो मगधदेश है, उस जिन-प्रणीत श्रेष्ठ धर्मसेयुक्त देशमें शालि नाम एक गाँव था। उसमें सोमदेव नामका ब्राह्मण रहता था। सोमदेवकी स्त्रीका नाम अग्निला था। इनके अग्निभूति तथा वायु-भूति नामके दो पुत्र हुए। ये दोनों भाई मिथ्याशास्त्र भी अच्छे विद्वान् थे। ब्राह्मण-कुलमें पैदा होनेका उन बड़ा गर्व था। एक दिन ये दोनों भाई नन्दिवर्द्धन वहाँ उ. गये हुए थे। इन्होंने वहाँ जंगलमें पृथ्वीको किये हुए संघसहित नन्दिवर्द्धन मुनिको देखकर मृतको ...ियाँ दीं। सत्य है दुष्ट दुराचारी लोग पवित्र

साधुओंको देखकर, चाँदको देखकर भौंकते
कुत्तोंकी तरह उनपर क्रोधित होते हैं। नन्दिवर्द्धन गुरुने
उन दुष्टोंको अपनी ओर आते देखकर संघके मुनियोंसे
कहा—आप लोगोंमें कोई इनके साथ न बोले नहीं तो
सारे संघको कष्ट सहना पड़ेगा। अपने आचार्यके इस प्रकार
हित-मित-सुखरूप वचनोंको सुनकर सब मुनि मौनसहित
ध्यानमें बैठ गये। उन सब मुनियोंको इस प्रकार मेरु-सदृश
ध्यानमें निश्चल बैठे देखकर ये दोनों भाई उनकी हँसी-दिल्लगी
उड़ाते हुए अपने गाँवको चल दिये। उधर
एक सत्यक नाम निरभिमानी मुनि आहार क
ये ज्ञानलव-विदग्ध दोनों भाई उन्हें देख
नड़े! ओ तपोभ्रष्ट! तूने, जिसमें बहुत प
दिये जाते हैं वह वेद-विहित यज्ञ तो कभी
तुझे नाना तरहके दिव्य सुखोंका स्थान स्व
सुनकर, जिनवचनरूप समुद्रके बढ़ाने
मुनि उनसे बोले—ब्राह्मणो, तुम बड़े
हो। भला, जरा तो विचार करो कि
खानेवाले पशुओंकी यज्ञमें बलि दे
और शराब पीकर ही यदि स्वर्ग
नरक किस पापसे जायँगे? य
यहाँ स्वर्गका कारण माना है
जो सदा जीवोंको मारा क